आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्यों में दार्शनिक चेतना

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी० एच-डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी० एच-डी०, डी० लिट्०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,

अतर्रा (बाँदा)

अनुसंधित्सु

कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया

एम० ए० (हिन्दी)

दिसम्बर, १९८०

प्राक्कथन

दर्शन का जीवन से गहन संबंध है। यही कारण है कि संसार के सभी जीवन्त काव्य दार्शनिक दृष्टि से अति महत्व के हैं। हिन्दी के महाकाव्यों को संस्कृत की एक उदात्त चिन्तनधारा और परम्परा स्वयं ही प्राप्त है और संस्कृत के काव्य तथा अन्य साहित्यिक कृतियाँ दर्शन की दृष्टि से संसार के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। अतएव हिन्दी की विशाल रचनाओं पर लोक साहित्य का प्रभाव पड़ना बहुत स्वाभाविक है। आधुनिक युग के कवियों और साहित्यकारों को पाश्चात्य चिन्तनधारा और साहित्य से सम्पर्क करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है, जिसके कारण ज्ञान के क्षेत्र ने उनके चिन्तकों को विशेष पुष्टता प्रदान की है। यह पुष्टता उनके साहित्य में स्पष्ट अंकित प्रतीत होती है। यों भारतीय दर्शन में प्रायः संसार की समस्त विचारधाराओं को स्वाभाविक रूप से आत्मसात किये हुए हैं फिर भी दर्शन में दृष्टिकोण के अन्तर का पर्याप्त महत्व है। इस दृष्टि से आधुनिक युग के साहित्यकारों का पाश्चात्य चिन्तन से सम्पर्क होने और उसे निरखने-परखने का अवसर प्राप्त होने का विशेष महत्व है। भारतीय और विशेष कर हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों पर पाश्चात्य चिन्तन का न्यूनाधिक प्रभाव ही है किन्तु छायावादी कवियों के महाकाव्य इस बात के अपवाद हैं। इन कवियों के विचार जहाँ एक ओर वैदिक और उपनिषदिक चिन्तन का ठोस आधार लिए हुए हैं वहीं पाश्चात्य दार्शनिकों और मनीषियों से भी पर्याप्त प्रभावित हैं।

प्रथम अध्याय में काव्य के स्वरूप, काव्य के भेद व आधुनिक महाकाव्यों पर सामान्य चर्चा के साथ अधिकांश काव्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। काव्य के स्वरूप पर विचार करते समय संस्कृत अंग्रेजी एवं हिन्दी के प्रमुख आचार्यों एवं विचारकों के उद्धरणों के साथ यह बताया गया है कि रस से युक्त वाक्य को ही काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। काव्य के भेद के अन्तर्गत भारतीय संस्कृत साहित्य में वर्णित काव्य भेदों का उल्लेख करते हुए इस संदर्भ में आधुनिक दृष्टि का भी परिचय दिया गया है। यहाँ मुक्तक एवं प्रबन्ध काव्यों के भेदों उपभेदों का भी विस्तार से उल्लेख है। आधुनिक युग के महाकाव्यों का उल्लेख करते समय बताया गया है कि प्रायः तीन प्रकार के महाकाव्य हिन्दी में दृष्टिगत हैं-

1- पूर्णतः लक्षण बद्ध
2- अंशतः लक्षण बद्ध तथा
3- सर्वथा नवीन प्रयोग युक्त महाकाव्य।

जिन महाकाव्यों का इस अध्याय में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है वे हैं- प्रिय प्रवास, साकेत, विरहिणी, श्री रामचन्द्रोदय, सिद्धार्थ, कामायनी, पार्वती, जय भारत, उर्मिला, लोकायतन, जानकी जीवन, कृष्णायन, विदेह, रामराज्य, अरुण रामायण तथा भगवान राम, ये सभी महाकाव्य आधुनिक युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि इनमें से प्रिय प्रवास व साकेत जहाँ द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों की रचनाएँ हैं तो वहीं कुछ मानस चतुश्शती के अवसर पर रचित अरुण रामायण जैसी अत्याधुनिक कृतियाँ भी हैं।

शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय में दर्शन के स्वरूप और भारतीय दर्शन की विशेषताओं व मुख्य विचार बिन्दुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

भारतीय दर्शन के मुख्य विचार बिन्दु जीव, ईश्वर, जगत, माया, मोक्ष व मोक्ष साधन है। इस अध्याय में इन सभी विषयों पर वेद व उपनिषदों आदि में प्रस्तुत व्याख्याओं से साथ-साथ चार्वाक, जैन, बौद्ध शैव, सांख्य, न्याय, योग मीमांसा व वैशेषिक आदि दर्शनों में उल्लिखित विचार धाराओं पर भी सार्थ दृष्टिपात किया गया है। इस सन्दर्भ में अद्वैत वेदान्त, वैष्णव वेदान्त, माध्व दर्शन निम्बार्क दर्शन, वल्लभ दर्शन व चैतन्य दर्शन का भी विधिवत समावेश है।

शोध प्रबन्ध तृतीय अध्याय में आधुनिक महाकाव्यों में जीव का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इस दृष्टि से वेदान्त बौद्ध दर्शन, शैव दर्शन या अरविन्द दर्शन के प्रभावों को विभिन्न कृतियों स्पष्ट करते हुए जीव को ईश्वर या ब्रह्म के अंश में देखा गया है। प्रायः सभी महाकाव्यकारों ने स्वीकार किया है कि जीवात्मा परमात्मा का ही एक अंश है तथा उसकी प्रेरणा से ही देह में उपस्थित होकर सुख दुख आदि का अनुभव करने में सहायक है किन्तु यह कर्म बन्धनों से बंधता हुआ भी अन्ततः उनके अधीन नहीं है।

ईश्वर इस जगत का कर्ता भर्ता और हर्ता है। चतुर्थ अध्याय में इस संदर्भ में आधुनिक युग के उक्त प्रमुख महाकाव्यों को निरखा-परखा गया है। इन सभी काव्यकारों ने ईश्वर को सर्व शक्तिमान तथा सर्वनियन्ता के रूप में माना है। इस दृष्टि से उनका चिन्तन आस्तिक दर्शनों से विशेष प्रभावित है। कवियों ने यह स्वीकार किया है कि ईश्वर साधक के मन में भक्ति का प्रकाश देकर उसके माया जन्य तमस को समाप्त करता है तथा अपने स्वरूप से परिचित कराता है। कृष्णायन व जय भारत आदि काव्यों में स्थिति विशेष रूप से परिलक्षित होती है।

माया ईश्वर की एक ऐसी विशिष्ट शक्ति है जिसके द्वारा वह समस्त सृष्टि का संचालन करता है। अपनी इस शक्ति द्वारा ही उसने समस्त सुर महात्मों व लोकधारियों की रचना की है। पांचवें अध्याय में परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर, शिव, कृष्ण, राम या अभिलाष की इस शक्ति पर आधुनिक युग के महाकाव्यों के संदर्भ में प्रकाश तो डाला ही गया है साथ ही यह भी बताया गया है कि उसने जगत की रचना किस प्रकार की? जगत की रचना का उसका क्या उद्देश्य था? जगत में परमात्मा व्याप्त है या नहीं व्याप्त है? जगत के संबंध में अधिकांश कवियों का विचार मिथ्यात्व परक है किन्तु कामायनी एवं लोकायतन आदि काव्यों में जगत को सत्य तथा परमात्मा से अभिन्न माना गया है तथा इसे व्यष्टि जीवन को सत्य के शोधन का साधन स्वीकार किया गया है।

छठे अध्याय में माया के स्वरूप पर व्यापक प्रकाश विकीर्ण किया गया है। तथा आलोच्य महाकाव्यों में निहित काव्यांशों के आधार पर भिन्न भिन्न कवियों की माया परक विचार धाराओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। माया का इन काव्यों में भिन्न-भिन्न नामों और रूपों में उल्लेख अभिमत है यथासम्भव किया गया है कि शोध प्रबन्ध में उन सबका उल्लेख सम्मिलित हो जाय। माया को प्रायः सभी कवियों ने जगत के मिथ्यात्व का मुख्य कारण माना है तथा यह बताया है कि इसी प्रभाव से ही जागतिक भेद-विभेद भासित होते हैं। जगत मूलतः परमात्मा द्वारा निर्मित होने के कारण सत्य रूप होना चाहिए किन्तु माया के प्रभाव के कारण यह संसरण शीलता धारण करता है और जागतिक प्राणी जीवन-मृत्यु के चक्र में निर्बाध रूप से परिक्रमा किया करते हैं।

शोध प्रबन्ध के सातवें अध्याय में आलोच्य काव्यों के अन्तर्गत वर्णित मोक्ष का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। मोक्ष ज्ञान प्राप्ति के स्थिति का नाम

है । प्रायः सभी कवियों ने मानवता को इस चतुर्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति का संकेत किया है । यह अवश्य है कि इस स्थिति को जहाँ कुछ कवियों ने कैवल्य का नाम दिया है तो कुछ ने निर्वाण या अमृत स्थिति आदि कोई अन्य नाम लेकिन सभी का लक्ष्य उस स्थिति से ही है जहाँ पहुँच कर साधक सामान्य भौतिक धरातल से बहुत ऊपर उठकर चेतना के ऐसे स्तर को प्राप्त कर लेता है जहाँ सूर्य, चन्द्र, दिन-रात, सुख-दुख, हानि-लाभ, जीवन-मरण या जय-पराजय आदि में कोई भेद नहीं रह जाता है । उस स्थिति में यदि कुछ होता है तो वह केवल अखण्ड ज्ञान और अखण्ड आनन्द । यह वह स्थिति है जिसे प्राप्त कर लेने के बाद योगी, भक्त या कर्मयोगी में अमित तोष उत्पन्न हो जाता है और वह उसे प्राप्त कर लेने के उपरान्त उससे कभी भी विरत नहीं होना चाहता ।

मोक्ष के तीन प्रमुख साधन बताये गये हैं - ज्ञान, भक्ति और कर्म आठवें अध्याय के अन्तर्गत आलोच्य महाकाव्यों में उल्लिखित इन तीनों ही साधनों का विस्तार से उल्लेख है । आधुनिक युग के महाकाव्यों में प्रायः यह देखना को मिला है कि कवियों ने ईश्वर की कृपा और निष्काम कर्म पर विशेष बल दिया है । पंत, प्रसाद, द्वारिका प्रसाद मिश्र, पोद्दार रामावतार अरुण, राजा राम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा आदि कवियों ने ऐसे कर्मों पर भी विशेष बल दिया जिससे निजी तौर पर मोक्ष चाहे तो हो ही उससे शोषित एवं दलित मानवता का उत्थान भी हो सके अर्थात जन जन को भौतिक समस्याओं से मुक्ति प्राप्त हो सके । इस संदर्भ में आधुनिक महा-कवियों का दृष्टिकोण गांधी से विशेष रूप से प्रभावित प्रतीत होता है ।

शोध प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार है । इसमें शोध-प्रबन्ध की सम्पूर्ण सामग्री का सार और निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में दर्शन शास्त्र के विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों का उद्धरण के प्रयोग किया गया है । अतः मैं उन सभी विद्वानों का हृदय से आभारी हूँ , जिनके अध्ययन का लाभ मैंने इस ग्रन्थ में लिया है।

श्रद्धेय गुरुवर डा० विश्वम्भर दयाल जी अवस्थी, डी०लिट् जी की कृपा का ही यह सुफल है अतएव उनके प्रति आभार व्यक्त कर देने मात्र से मैं गुरु ऋण से उऋण नहीं हो सकता ।

पूज्य पिता डा० विश्वम्भर सिंह भदौरिया जी का मैं सदैव स्नेह भाजन रहा हूँ । पुत्र होने के नाते उन का कुछ भी मेरे लिए अदेय नहीं है । लेकिन मेरे पास उनके बदले में क्या है । ईश्वर मुझे उनकी सेवा करने योग्य बनाये ऐसी मेरी कामना है । वे सदैव ही मुझे इस कार्य के लिए प्रेरित करते रहे हैं तथा गुत्थियों को सुलझाने में भी सहायता की है । उनका आशीर्वाद इस कार्य में प्रतिक्षणमेरा संबल रहा है ।

हिन्दी विभाग,
इस अवसर पर मैं श्रीमती डा० मिथिलेश चौहान, अध्यक्षा, कुमारी देवी गर्ल्स डिग्री कालेज, कानपुर, के प्रति भी विशेष आभारी हूँ । मुझे उनसे समय-समय पर पुस्तकीय सहायता व मार्ग निर्देश प्राप्त होता रहा है ।

शोध प्रबन्ध की पूर्णता के अवसर पर मैं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती मृदुला भदौरिया का भी स्मरण करना चाहता हूँ । वह सदैव ही प्रिया रूप में मेरे साथ रही है तथा अवरोधों और व्यवधानों के बीच उत्साह बढ़ाने और कर्तव्य निष्ठा की प्रेरणा देने में सहायक हुई है ।

शोध-प्रबन्ध का टंकण कार्य श्री रामकिशोर जी त्रिपाठी ने सम्पन्न किया है । यदि उन्होंने इतनी लगन और निष्ठा न दिखाई होती तो शायद यह कार्य इतनी शीघ्र सम्पन्न न हो पाता । अतएव मैं उनका भी हृदय से आभारी हूं ।

अनुसंधित्सु

कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया.

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

काव्य का स्वरूप

आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्यों में दार्शनिक चेतना

प्रथम अध्याय

काव्य का स्वरूप

काव्य के भेद

मुक्तक काव्य

प्रबन्ध काव्य

- भेद

खण्ड काव्य

महाकाव्य

आधुनिक महाकाव्य

आलोच्य आधुनिक प्रतिनिधि महाकाव्य.

प्रथम अध्याय

काव्य का स्वरूप

काव्य का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास चिरंतन काल से चल रहा है किन्तु आज तक न तो काव्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा ही निर्धारित की जा सकी है और न ही कोई सर्वमान्य लक्षण ही निश्चित किये जा सके हैं। काव्य जीवन की एक-एक अनुभूति और एक-एक स्पन्दन से सीधे तौर पर जुड़े होने के कारण स्थूल सीमाओं में बाँधने की वस्तु नहीं है, उसका अर्थ और प्रभाव क्षेत्र असीम है। कोई भी भाव और कोई भी क्षण किसी भी व्यक्ति में कवि के लक्षण प्रकट कर सकता है। काव्य-सर्जना के लिए किसी विशिष्ट बौद्धिकता स्तर या विशिष्ट भावभूमि की कोई विशेष आवश्यकता कदापि नहीं होती है। एक भाव एक व्यक्ति को विभोर भी कर सकता है और नहीं भी कर सकता है जो व्यक्ति किसी विशिष्ट क्षण, भाव या दृश्य में विभोर हो जाता है वह काव्य सर्जना के पक्ष का भागी हो जाता है जो विभोर नहीं हो पाता है वह ब्रह्मानन्द सहोदर के मधुमय आनंद से वंचित रह जाता है। अनुभूति के इन क्षणों को परिभाषा बद्ध कर पाना नितान्त कठिन है।

कुछ लोग कविता का नाता सभ्यता से जोड़ते हैं। इस दृष्टि से प्रसिद्ध आलोचक 'मिल' का नाम लिया जा सकता है जो यह मानते हैं कि मनुष्य में जब से मनुष्यता का विकास हुआ तब से कविता और मनुष्य का अटूट संबंध जुड़ा हुआ

है । वस्तुतः काव्य ने मनुष्य को मनुष्यता के अधिक निकट पहुँचाने में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह किया है किन्तु कविता और मनुष्य का संबंध तो आदिम युग से ही रहा है आज भी असभ्य और अशिक्षित कही जाने वाली बहुत सी जातियों का अपना अलग लोक साहित्य है । डा० भगीरथ मिश्र ने भी कहा है-'काव्य की व्यापकता का सबल प्रमाण तो यही है कि संसार के सभी देशों और जातियों में प्रारम्भ से ही काव्य किसी न किसी रूप में पाया जाता है । न तो सभ्य संसार इसे केवल अपनी ही सम्पत्ति कह सकता है और न शिक्षित ही इसे अपनी बपौती । निरक्षर, अशिक्षित लोगों के कंठ से काव्य की धारा फूट निकलने के प्रमाण हमारे सामने हैं और सभ्य कही जाने वाली जातियों का भी अपना लोकगत काव्य है ।

काव्य को कुछ लोगों ने असभ्यावस्था से संबंधित माना है और यह प्रश्न उठाते हैं कि ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता जाता है त्यों त्यों काव्य का ह्रास होता जा रहा है । जितने बड़े बड़े महाकाव्य, विशाल कल्पना और प्रभाव संचारी भावनाओं से युक्त काव्य हमें पूर्ववर्ती युग में मिलते हैं उतने आज नहीं । न आज उतने बड़े काव्य ग्रन्थ लिखे ही जाते हैं और न वैसे पढ़े ही जाते हैं । वास्तव में इसका कारण अति बौद्धिक विकास और जीवन में अनुभूति की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्व देने के कारण अशान्तिपूर्ण और व्यस्त जीवन की अवस्था है । आज हम इतने व्यस्त हैं । इसके परिणामस्वरूप न तो व्यापक काव्य रचना का या उसके पठन का ही समय नहीं । अनुभूति और मन की काव्य संबंधी क्षुधा को हम अन्य साधनों से संतुष्ट कर लेते हैं । इसके परिणाम स्वरूप न तो व्यापक काव्य की धारा बह पाती है और न अनुभूतियों के जैसे विशाल बादल ही कल्पना के आकाश में उमड़ घुमड़ कर घनघोर काव्य वर्षा ही कर पाते हैं । व्यस्तता के कारण छुटपुट कविता की बूंदा-बांदी ही हो पाती है, जब फिर हमारी जीवन-धरती में सरसता और हरियाली कैसे

आये ? हम व्यापक काव्यानन्द में तन्मय नहीं हो पा रहे हैं । परन्तु जीवन में काव्य की आवश्यकता है, इसमें संदेह नहीं "।[1]

काव्य की प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

1- मम्मटाचार्य- आचार्य मम्मट ने दोष रहित गुणवालीऔर कभी अलंकृत भी शब्द अर्थमयी रचना को काव्य कहा है-

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'[2]

2- आचार्य विश्वनाथ- आचार्य विश्वनाथ ने रस से युक्त वाक्य को काव्य माना है-

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'

3- पण्डित राज जगन्नाथ- पंडित राजजगन्नाथ ने काव्य की परिभाषा में अर्थ की रमणीयता को प्रधानता दी है-

'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्यम्'[3]

4- शेक्सपियर- अंग्रेजी के प्रसिद्ध शेक्सपियर ने काव्य में कल्पना को प्रधानता दी है-

"The Poet's eye, in a fine frenzy rolling, Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven and as imagination bodies forth The forms of things unknown, the poet's pen turns them to shape and gives to airy nothings, A local habitation and a name.[4]

1- काव्यशास्त्र-डा0 भगीरथ मिश्र, तृतीय संस्करण 1966 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

2- काव्य प्रकाश (1/4)

3-

3- रस गंगाधर(काव्यमाला पृ0 4)

4 A Midsummer Night's Dream (Volume-1) - Shakespeare.

5- वर्ड्सवर्थ — वर्ड्सवर्थ ने काव्य में भाव को प्रधानता देते हुए लिखा है कि काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है।

Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes, its origin from emotion recollected in tranquality.[1]

कॉलरिज — कॉलरिज ने कवित्व में अभिव्यक्ति को प्रधानता देते हुए उत्तमोत्तम क्रम विधान को महत्व दिया है।

Poetry the best words in the best order.[2]

मिल्टन — मिल्टन ने कविता को सदा प्रत्यक्ष मूलक और रागात्मक कहा है।

Poetry should be simple, sensuous and passionate.[3]

हडसन — हडसन के विचार से कविता कल्पना और मनोवेगों द्वारा जीवन की व्याख्या करती है।

Poetry is interpretation of life through imagination and emotion.

महावीर प्रसाद द्विवेदी —

द्विवेदी ने कविता में असलियत पर जोर दिया है। वस्तुतः ये मिल्टन की परिभाषा से प्रभावित है। सादगी असलियत और जोश यदि ये तीनों गुण कविता में हों तो कहना ही क्या है परन्तु बहुधा अच्छी कविता में भी इनमें से एक आध गुण की कमी पाई जाती है। कभी-कभी देखा जाता है कि कविता

1- Preface to Lyrical Ballads - Wordsworth
2- Quoted by Shipley in Quest for literature - Page-241
3- Essay on Education
4- Introduction to the study of poetry - Page-62.

मे केवल जोश रहता है, सादगी और असलियत नहीं । कभी-कभी सादगी और जोश पाए जाते है असलियत नहीं । परन्तु बिना असलियत के जोश का होना कठिन है । अतएव कवि को असलियत का सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए ।[1]

रामचन्द्र शुक्ल-

आचार्य शुक्ल ने काव्य मे सत्य की अवहेलना न करते हुए रागात्मक तत्व को प्रधानता दी है-

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है । इस साधना को हम भाव योग कहते है और कर्मयोग और ज्ञान योग के समकक्ष मानते है ।'[2]

जयशंकर प्रसाद-

प्रसाद जी काव्य को आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति बताते हैं उनके विचार है-

'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है । आत्मा की मननशक्ति की असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व मे सहसा ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है ।'[3]

1- रसज्ञ रंजन पृ051, महावीर प्रसाद द्विवेदी
2- चिन्तामणि, भाग 1 पृ0192 तथा 93, आ0 रामचन्द्र शुक्ल
3- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृ039 जयशंकर प्रसाद

डा0 भगीरथ मिश्र ने काव्यशास्त्र में विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी काव्य की परिभाषाओं पर विचार के उपरान्त काव्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए शब्द तत्व,अर्थ तत्व, भाव तत्व,कल्पना तत्व व बुद्धि तत्व पर विशेष बल दिया है । इस संदर्भ में उनके विचार इस प्रकार हैं-

'जिन लक्षणों को हमने अधिक मान्य ठहराया है, वे निम्न लिखित हैं-

1- वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

2- रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यं ।

3- अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यं ।

4- सत्य को अपने मूल चारुत्व में अभिव्यक्ति काव्य है ।

5- Poetry is the art of unique pleasure with truth by calling imagination to the help of reason. (Johnson)

6- Poetry is the art of expressing, melodious words, thoughts, which are the creations of imaginations and feelings. (Chamber's)

7- काव्य कल्पना और अनुभूति से प्रेरित सत्य की रमणीय शब्दों में अभिव्यक्ति है ।

8- शब्द,अर्थ अथवा दोनों की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना काव्य है ।

प्रथम तीन परिभाषाओं पर विचार करने से वाक्य या शब्द,अर्थ, रमणीयता,रसात्मकता,गुण,अलंकार ये काव्य के तत्व प्रकट होते हैं । इनमें रस,गुण अलंकार रमणीयता के ही विभिन्न साधनों के रूप हैं । चौथी परिभाषा में सत्य, चारुत्व और अभिव्यक्ति ये तत्व मिलते हैं । पांचवीं से कल्पना

युक्ति, सत्य, आनन्द और कला तथा छठी परिभाषा में अभिव्यक्ति की कला, माधुर्य, शब्द, विचार, कल्पना और अनुभूति के तत्व मिलते हैं । सातवीं और आठवीं परिभाषाएं पूर्ववर्ती धारणाओं पर ही आश्रित हैं, उनमें भी कल्पना, अनुभूति, सत्य, शब्द आदि तत्व पूर्ववर्ती लक्षणों के समान विद्यमान हैं । शब्द, अर्थ, सत्य, आनन्द, रमणीयता, कल्पना, विचार, अनुभूति अभि-व्यक्ति, कला, रस, गुण, अलंकार आदि में सभी बातें आजाती हैं । इन बातों का परीक्षण करें, तो हम देखते हैं कि शब्द, अर्थ, अभिव्यक्ति ये तीनों भाषा के तत्व हैं। रस, आनन्द, अनुभूति रमणीयता आदि भाव तत्व के अन्तर्गत हैं, रमणीयता, कला अभिव्यक्ति-कौशल आदि कल्पना तत्व से संबंध रखते हैं। इन सबको संगठित करके कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना बुद्धि और विचार तत्व का कार्य है । परन्तु इन सब में व्याप्त रहता है सत्य । ऐसी दशा में हमें यह स्वीकार करना होगा कि काव्य की ही अभिव्यक्ति होती है, असत्य की नहीं । सत्य की अभिव्यक्ति करके ही काव्य खड़ा रह सकता है। सत्य के कारण ही काव्य का अस्तित्व है और उसको सृजन करने की प्रेरणा भी मिलती है । अतः हम कह सकते हैं कि काव्य की आत्मा है सत्य ।

यह सत्य वैज्ञानिक के सत्य से भिन्न ही रहता है, क्योंकि यह सार-मात्र नहीं वरन साकार होता है । अपने सांगोपांग रूप में वह अपने समस्त क्रिया-कलाप और गतिशीलता के साथ हमारे सामने आता है । वैज्ञानिक के द्वारा वर्णित फूल नहीं, वरन अपने वृन्त की टहनी में हरी कटावदार, सजीव पत्तियों के बीच सुकुमार सुन्दर, मनोहारी रूप में मन्द पवन की झकोर पर झूमता और इठलाता हुआ, प्राणियों के नेत्र को आकृष्ट करता हुआ, प्रातः खिलकर सन्ध्या तक प्रखर धूप में मुरझानेवाला फूल है जिसे इस प्रकार की कल्पना, मन, अनुभूतिप्राणी रूप को कवि हमारे सामने प्रत्यक्ष करता है । सत्य का यह वास्तविक रूप काव्य की आत्मा है । सत्य का समरूप ही सौन्दर्य है । अतः कवि की सत्य की अभिव्यक्ति

सुन्दर होता है। इसी तथ्य की अनुभूति करके ही अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि 'कीट्स' ने लिखा है-

"Beauty is truth, truth is beauty, that is all."

अर्थात सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य है। यह सत्य जीवन का सत्य है। सत्य अपने स्वभाव से ही शिव या मंगलमय भी होता है, अतः काव्य का सत्य जो सुन्दर है, वह शिव भी है। इसी युक्ति से काव्य सत्यं शिवं, सुन्दरं के रूप में कहा जाता है।

इस आत्मा को साकार शरीर का रूप देने वाले पाँच तत्व ही हैं- शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना और बुद्धि या विचार।'[1]

काव्य के भेद-

संस्कृत काव्य शास्त्र में काव्य के भेद काव्य की आत्मा के आधार पर किये गये हैं। संस्कृत आचार्यों ने जिन काव्य रूपों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं-

1- काव्यशास्त्र पृ0 19 से 21 - डा0 भगीरथ मिश्र

2- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधान पृ0 24, डा0 निर्मला जैन.

आधुनिक काल में काव्य के रूप और भेदों पर प्रमुख रूप से बाबू श्यामसुन्दर दास ने साहित्यालोचन, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वाङ्मय विमर्श, बाबू गुलाबराय ने काव्य के रूप व पं० रामदहिन मिश्र ने काव्य दर्पण में विचार किया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल व डा० कृष्णलाल के इतिहास ग्रन्थों में भी इस विषय पर विचार हुआ है।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने इस दृष्टि से पाश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित हैं उन्होंने काव्य का विभाजन वर्ण्य विषय और दृष्टिकोण के आधार पर किया है-

'कविता को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं- एक तो जिसमें कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करके अपने अनुभवों और भावनाओं से प्रेरित है, दूसरा वह जिसमें वह अपनी अन्तरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में पैठता है और जो कुछ ढूंढ निकालता है उसका वर्णन करता है।[1]

यहाँ यह सूचित कर देना आवश्यक है कि स्वानुभूति निरूपक और वस्तुवर्णी निरूपक यह भेद स्थूल दृष्टि से ही किया हुआ है।[2]

श्री शुक्ल ने स्वतन्त्र रूप से काव्य विभाजन प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु अपने इतिहास ग्रन्थ में मात्र प्रचलित उनकी काव्यरूपों का उल्लेख किया है। वीरगाथा काल की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं-

'वीरगाथा को हम दो रूपों में पाते हैं- मुक्तक रूप में और प्रबन्ध रूप में भी। मुक्तक रचनाओं का विचार छोड़कर यहाँ वीरगाथात्मक प्रबन्ध

1- साहित्यालोचन पृ० 95, बाबू श्याम सुन्दरदास.
2- गोस्वामी तुलसीदास पृ० 77 पं० रामचन्द्र शुक्ल.

काव्यों का ही उल्लेख किया जाएगा ।-----ये वीरगाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं- प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीरगीतों (Ballads) के रूप में ।[1] इस प्रकार श्री शुक्ल ने वीरगाथा काल में प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य और वीर गीतों का उल्लेख किया है । गीत को वे मुक्तक का ही अंग मानते हैं-

'कृष्णोपासक कवियों ने मुक्तक के एक विशेष अंग गीत काव्य की ही पूर्ति की पर राम चरित को लेकर अच्छे अच्छे प्रबंध काव्य रचे गये ।'[2]

आचार्य शुक्ल ने वर्णनात्मक प्रबन्ध का वर्णन इस प्रकार किया है-

कथात्मक प्रबन्धों से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने में आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबन्ध कह सकते हैं । दानलीला, मान लीला-----इसी प्रकार की रचनाएँ हैं । बड़े बड़े प्रबन्ध काव्यों के भीतर इस प्रकार के वर्णनात्मक प्रसंग रहा करते हैं ।''' इनमें बड़े विस्तार के साथ वस्तु वर्णन रहता है ।'[3]

आचार्य शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काव्य रूपों जैसे पद्यात्मक निबंध व प्रगीत मुक्तक काव्य आदि का भी उल्लेख किया है । प्रगीत मुक्तक की विशेषताओं का अंकन उन्होंने इस प्रकार किया है-

कला कला की पुकार के कारण योरप में प्रगीत मुक्तकों (Lyrics) का ही अधिक चलन देखकर यहाँ भी उसी का ज़माना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लम्बी कविताएँ पढ़ने की किसी को फुरसत कहाँ जिनमें कुछ इतिवृत्त भी

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 38-39 रामचन्द्र शुक्ल

2- वही पृ0 82

3- वही पृ0 386-87

भावना गीत व आध्यात्मिक गीत आदि का उल्लेख किया है ।[1]

डा0 श्री कृष्ण लाल ने भी आधुनिक कविता के रूप और शैली का विवेचन रूप के आधार पर वर्ग विभाजन करके किया । उन्होंने काव्य को रूप के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा। भारतीय साहित्य में साधारणतया तीन प्रकार के काव्य रूपों का व्यवहार है (1) प्रबंध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य की गणना है (2) गीति काव्य और (3) मुक्तक काव्य ।[2]

बाबू गुलाब राय जी ने काव्य भेदों के विभाजन का आधार भारतीय समीक्षा पद्धति को बनाया है । उनके द्वारा प्रस्तुत काव्य के रूप इस तालिका से स्पष्ट है-

---

1- काव्य दर्पण पृ0 329 पं0 रामदहिन मिश्र
2- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ0 92 डा0 श्रीकृष्णलाल
3- काव्य के रूप पृ0 20 बाबू गुलाबराय

मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य को प्रायः दो भागों में बाँटा गया है स्फुट मुक्तक तथा संयुक्त या निबद्ध मुक्तक । इसके अलावा गीत प्रगीत व उसके भी उपभेद उद्बोधन गीत, शोक गीत, सम्बोधन गीत, राष्ट्रीय गीत, लोकगीत, कथागीत या छन्द की विशेषताओं के आधार पर दोहा, कवित्त, सवैया, रोला, सॉनेट आदि मुक्तक के भेद के अन्तर्गत आते हैं । मुक्तक के संबंध में डा० निर्मला जैन के विचार इस प्रकार हैं-' इसमें मुक्तक का नितान्त व्यापक विभाजन दो भेदों- स्फुट मुक्तक' और संयुक्त -मुक्तक में किया है, तदनन्तर अन्य विशेषताओं के आधार पर उसका विभाजन अन्य उपभेदों में किया गया है । उक्त विभाजन में प्राचीन संस्कृत आचार्यों के तद्विषयक आशय को दृष्टि में रखते हुए उनके मत को ही मान्यता दी गयी है । अर्थात मुक्तक से हमारा आशय ऐसी रचना से है जो स्व अर्थ-प्रकाशन में समर्थ और पूर्वापरक्रम से निरपेक्ष हो, व जिसके अर्थ की अभिव्यक्ति व रसास्वादन के लिए पाठक को अन्य पदों का सम्बल ग्रहण न करना पड़े । ऐसी मुक्त रचनाओं में स्वतः पूर्ण छन्द रचना के अतिरिक्त ऐसे पद्यांशों का भी अन्तर्भाव कर लिया गया है,1 जिनका छन्द-विधान पिंगल शास्त्र के नियमानुकूल नहीं परन्तु किसी अर्थ या भाव की अभिव्यक्ति के लिए एक छन्द से दूसरे छन्द पर नहीं जाना पड़ता - अर्थात जिनका आशय अथवा कवि का प्रेष्य अपनी व्यंजना में एकाधिक पद-खण्डों के अभिलषित अर्थ से नहीं, एक विशिष्ट स्वतः पूर्ण पद्यांश से स्पष्ट हो जाए । इस पद्यांश का निर्माण एक छन्द तक सीमित हो सकता है अथवा कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार इस छन्द में विस्तार संकोच, मिश्रण अथवा परिवर्तन करके नव्य आकार का निर्माण कर सकता है, परन्तु इस प्रकार के दो पद्यांशों के अर्थों की स्थिति सापेक्ष नहीं होनी चाहिए । इस प्रकार के पृथक पद्यांशों में अन्तराय न हो और अर्थ की अभिव्यक्ति व पूर्णता की दृष्टि से उनका स्वतन्त्र सातत्य नहीं हो- यह मुक्तक (स्फुट) काव्य की विशेषता है । ~~इसीलिए एक ही विषय पर~~

1-आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ० 307 डा० निर्मला जैन.

मुक्तकं कुलकं कोशः संघात इति तादृशः
सर्गबन्धांशरूपत्वादनुक्तः पद्य विस्तरः ॥(1/13)

दण्डी के विचार से मुक्तक कुलक, कोश, संघात आदि सर्ग बन्ध महाकाव्य के अवयव मात्र हैं/अतः इनका पद्य विस्तार नहीं किया गया है।

संस्कृत के अन्य विद्वानों में हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में अनिबद्ध मुक्तक आदि[1] तथा साहित्य दर्पण में विश्वनाथ ने 'छन्दोबद्धपद पद्य तेन मुक्तेन मुक्तकम्'[2] कहकर मुक्तक काव्य को अनिबद्ध या मुक्तकाव्य ही स्वीकार किया है।

हिन्दी के विद्वानों में आचार्य शुक्ल पं० पद्म सिंह शर्मा व डा० उदय भानु सिंह आदि मुक्तक को निरपेक्ष रचना ही मानते हैं। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में प्रबन्ध काव्य यदि वनस्थली है तो मुक्तक उसकी तुलना में चुना हुआ गुलदस्ता है। पं० पद्मसिंह इसे मिठी रोटी की तरह सर्वांग मधुर मानते हैं।

मुक्तक का दूसरा भेद संयुक्त मुक्तक है। संयुक्त मुक्तक भी सर्वथा निरपेक्ष रचना होती है किन्तु स्फुट छन्दों से अलग इनमें एकाधिक छन्द होते हैं। और निर्मला जैन के शब्दों में -' संयुक्त मुक्तकों से संस्कृत के आचार्यों का अभिप्राय निरपेक्ष स्वतः पूर्ण स्फुट छन्द रचना से भिन्न एकाधिक छन्दों में विरचित ऐसे मुक्तकों से था। जिनमें प्रबन्ध की भांति दूर तक कथा। नि बन्धन या तारतम्य तो नहीं हो, परन्तु वो एकाधिक छन्दों

1- काव्यानुशासन अध्याय 8 पृ0 465 हेमचन्द्र
2- साहित्यदर्पण, विमला व्याख्या षष्ठ परिच्छेद पृ0 224 विश्वनाथ

मे लिखे गए हों तथा वे अर्थ भावान्विति की दृष्टि से परस्पर सापेक्ष हों । यह किया मुक्तक इसलिए स्वीकार की जाती है क्योंकि इसमें कवि प्रबन्ध की भांति किसी स्थायी नहीं क्षणिक अनुभूति को व्यक्त करता है संयुक्त यह इसलिए है कि उसकी अनुभूति क्षणिक होते हुए भी एक से अधिक छन्दों मे प्रवाहित रहती है । प्राचीन आचार्यों ने परस्पर निबद्ध छन्दों का संख्या भेद के अनुसार नामकरण किया । इस प्रकार के संयुक्त मुक्तकों का उल्लेख अग्निपुराण और तत्पश्चात अनेक अन्य ग्रन्थों मे मिलता है । इस प्रसंग मे एक बात स्पष्टीकरण कर देना अभीष्ट होगा । संयुक्त मुक्त का संबंध एकाधिक छन्दों मे विरचित भाव-रचना से होने पर भी परस्पर-निरपेक्ष मुक्तकों के संकलन अथवा सजातीय मुक्तकों के एक स्थान मे सन्निवेश को संयुक्त मुक्तक नहीं माना जा सकता । संयुक्त मुक्तक मे प्रयुक्त छन्दों की परस्पर सापेक्ष्य स्थिति अनिवार्य है । परस्पर निरपेक्ष श्लोक समूह को आचार्य विश्वनाथ ने कोष माना और सजातीय छन्दों के एक स्थान मे सन्निवेश को व्रज्या कहा है । हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार के मुक्तक संकलनों को अनेक आधारों पर विभिन्न नाम दिए गए संख्या के आधार पर सतसई शतक,अष्टक आदि तथा छन्द की विशिष्टता पर दोहावली पदावली आदि । इस प्रकार के मुक्तक संकलन की प्रवृत्ति आधुनिक हिन्दी साहित्य मे अधिक लुप्तप्राय नहीं तो विरल अवश्य है ।'[1]

संस्कृत काव्य-शास्त्र मे संयुक्त मुक्तकों को क्षणिक भाव या विचार धारा की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार किया है तथा छन्दों की सापेक्ष स्थिति अनिवार्य मानी गयी है । संयुक्त मुक्तकों का भी आविर्भाव

1-आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप विधाए पृ0448 डा0 निर्मला जैन

उल्लेख अग्निपुराण में ही मिलता है- वहाँ लिखा है-

> महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम् ।
> कुलकं मुक्तकं कोषा इति पद्य समुच्चयम् ॥[1]

अग्निपुराण के बाद आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में व आचार्य आनन्द वर्धन और विश्वनाथ ने क्रमशः ध्वन्यालोक व साहित्य दर्पण में संयुक्त मुक्तकों का वर्णन किया है । आचार्य विश्वेश्वर ने अग्निपुराण के आधार पर मुक्तक भेदों का विवेचन इस प्रकार किया है-

1- निबद्ध मुक्तक- स्वयं में परिपूर्ण स्फुट श्लोक जैसे- अमरुशतक, गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती आदि के श्लोक ।

2- सन्दानितक (दो श्लोकों में क्रिया का अन्वय होने वाले युग्मक)

3- विशेषक (तीन श्लोकों में क्रिया समाप्त होने वाले ।

4- कलापक (चार का एक साथ अन्वय होने वाले श्लोक ।

5- कुलक (पाँच या पाँच से अधिक एक साथ अन्वित होने वाले श्लोक ।[2]

1-अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग डा० रामलाल शास्त्री पृ० 29

2-ध्वन्यालोक पृ० 248-49 डा० नगेन्द्र

वस्तुतः यह काव्य विधा वैशिष्ट्य व विषय और आकार के कारण मुक्तक के अन्तर्गत ही आएगी । हमारे वर्तमान साहित्य में भी संयुक्त मुक्तकों की पर्याप्त सर्जना हुयी है । आज के गीत और बड़ा आकार वाली मुक्त रचनाएं संयुक्त मुक्तकों के अन्तर्गत ही आएगी । बाबू गुलाब राय ने भी गीतों को संयुक्त मुक्तक ही स्वीकार किया है-

'साहित्य दर्पणकार ने दो-दो, तीन-तीन, चार-चार और पांच-पांच मुक्तकों के समूहों को क्रमशः युग्मक, सान्दानितक, कलापक और कुलक नाम दिया है ।---[1]

साहित्य दर्पणकार ने दो-दो और तीन-तीन छन्दों के भी मुक्तक माने हैं । अंगरेजी स्फुट कविताओं के स्टेन्ज़ा, समूह और गजल के गीत भी इसी प्रकार के संयुक्त मुक्तक गिने जायेंगे ।'[2]

वस्तुतः संयुक्त मुक्तक का प्रत्येक छन्द पूर्वापर संदर्भ में ग्रथित होता है तथा अपनी स्वतंत्र स्थिति में भाव पूर्ण नहीं होता है । उदाहरणार्थ कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की पतझर रचना देखिए-

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र ।
हे स्रस्त-ध्वस्त हे शुष्क-शीर्ण ।
हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत
तुम वीत-राग, जड़ पुराचीन ।

1- 1-काव्य के रूप पृ० 119, पृ० 89 बाबू गुलाबराय

2- वही.

सभी विद्वानों ने संस्कृत काव्य शास्त्र के उल्लिखित लक्षणों को ही खण्डकाव्य के रूप विधान के विवेचन का आधार बनाया है । इस संबंध में डा० निर्मला जैन के विचार भी देखिए

'प्रबन्ध काव्य के दूसरे भेद खण्डकाव्य के रूप विधान संबंधी लक्षण संस्कृत और हिन्दी काव्य शास्त्र में बहुत विरल और अस्पष्ट है । प्राचीन व आधुनिक काल के विद्वानों ने खण्डकाव्य शब्द की उपेक्षा करके ही छोड़ दिया है और जहाँ इस रूप की विशेषताओं के संबंध में निर्देश भी किया गया है वहाँ भी इसके शिल्प के विषय में ये आचार्य मौन है प्राय खण्डकाव्य के विषय, स्वरूप और विस्तार की सीमाएं ही इन लक्षणों से स्पष्ट होती है । रूप विधान की दृष्टि से खण्डकाव्य इन आचार्यों की दृष्टि में किस प्रकार का काव्य रूप था इसका निर्णय उनके द्वारा उदाहरण स्वरूप कथित काव्यों के रूप विश्लेषण से ही किया जा सकता है । हिन्दी साहित्य में भी खण्डकाव्य का विस्तार पूर्वक विवेचन नहीं किया गया विद्वानों ने खण्डकाव्य के विषय में कहा है उसका आधार भी संस्कृत विद्वानों का चिन्तन ही है ।'[1]

संस्कृत में खण्डकाव्य का प्रकारान्तर से सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य आनन्द वर्धन ने किया । उन्होंने इसके लिए खण्डकथा ' नामक काव्य भेद का उल्लेख किया है किन्तु उसके लक्षणों पर प्रकाश नहीं डाला है । अन्य आचार्यों ने भामह ,दण्डी और वामन आदि ने भी काव्य के महाकाव्य और मुक्तक दो रूप स्वीकार करते हुए खण्डकाव्य की कोई चर्चा नहीं की है ।

1-आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं, पृ0 201 डा0 निर्मला जैन.

संस्कृत आचार्यों में विश्वनाथ ने इसकी विषयगत सीमाओं का तो उल्लेख किया है किन्तु इसका आकार और रचनागत विशेषताओं को अस्पृश्य ही छोड़ दिया है। उनके अनुसार काव्य के एक भाग का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैक देशानुसारि च[1]

आधुनिक काल के हिन्दी विद्वानों में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी उक्त विचारों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए खण्डकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-

'महाकाव्य के ढंग पर जिस काव्य की रचना होती है पर जिसमें पूर्ण जीवन का ग्रहण न करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्ड काव्य कहते हैं।'[2]

बाबू गुलाबराय जी ने भी खण्डकाव्य में प्रबन्धात्मकता व कथा विस्तार पर ही बल दिया है-

'खण्डकाव्य में प्रबन्ध काव्य का सा तारतम्य तो रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है। उसमें जीवन की वह अनेकरूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में रहती है। उसमें कहानी और एकांकी घटना के लिए सामग्री जुटाई जाती है।'[3]

1- सा०दर्पण पृ० 325 षष्ठ परि० आ० विश्वनाथ

2- वाङ्मय विमर्श तृतीय संस्करण, पृ०39 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

3- काव्य के रूप, तृतीय संस्करण पृ०117 गुलाबराय

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार खण्डकाव्य का कथानक ऐतिहासिक प्रख्यात, मिश्र अथवा उत्पाद्य हो सकता है। इसमें महाकाव्य की वस्तु-संघटना की भाँति नाट्य संधियों के निर्वाह की अनिवार्यता नहीं होती है। आकार को ध्यान में रखते हुए इसके एकाधिक सर्ग भी हो सकते हैं तथा छन्दों की दृष्टि से अपेक्षाकृत बंधन कम है। शैली की दृष्टि से इसमें कुछ विद्वानों ने मंगलाचरण वस्तु निर्देश, सर्गों के अन्त में भावी कथा सूचना, सज्जन प्रशंसा, दुर्जनों की निंदा, सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन आदि विशेषताओं व रूढ़ियों का निर्देश किया है किन्तु खण्डकाव्यों में इन नियमों का अक्षरशः परिपालन कदाचित ही देखने को मिलता है।

डॉ० निर्मला जैन के शब्दों में खण्डकाव्य रूप विधान की दृष्टि से ऐसा काव्य रूप है जिसमें जीवन के किसी खण्डकाव्य घटना या प्रसंग विशेष को विषय बनाया जाता है। सामान्यतः इसका स्वरूप आख्यानात्मक एवं वर्णनात्मक होता है किन्तु विषय की आवश्यकता के अनुरूप उसमें भावाभिव्यंजक, आत्मसंलापात्मक व प्रगीतात्मक शैली का प्रयोग भी हो सकता है उसकी घटनाओं का रोमांच वस्तुगत भी हो सकता है। तथा उसमें पात्रों एवं कवियों के मानस प्रसंगों को स्वीकार कर आन्तरिक भावाभिव्यंजन व मनोविश्लेषण की व्यापकता भी हो सकती है।'[1]

डॉ० जैन ने स्पष्ट किया है कि कोई भी रचना आकार की लम्बाई के कारण ही खण्डकाव्य हो ऐसा नहीं है। उनके अनुसार - 'यद्यपि खण्ड काव्य के विषय और रूप विस्तार के संबंध में आचार्यों द्वारा किन्हीं

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ०207 - डॉ० निर्मला जैन

नियमों का निरूपण नहीं किया गया, किन्तु महाकाव्य से खण्डकाव्य का व्यावर्तन ही इस बात का प्रमाण है कि दोनों के सीमा विस्तार में परस्पर अन्तर है और साथ ही केवल एक क्षणिक अनुभूति या प्रसंग को लेकर लिखी जाने वाली कोई लम्बी कविता खण्डकाव्य नहीं हो सकती । खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान सर्वांगपूर्णता और कविता की एकाग्रता दोनों से भिन्न जीवन के खण्ड विशेष का अपनी समग्रता में अंकन होना चाहिए ।[1]

डा० जैन ने खण्ड काव्यों को तीन भागों में बांटा है । उनके अनुसार -

-'प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएं आती हैं जिनका रूप निर्माण महाकाव्य के ढंग पर किया गया है । दूसरे शब्दों में जिनको अन्य विषयादि संबंधी परिसीमाओं के कारण महाकाव्य नहीं स्वीकार किया जाता, परन्तु केवल रूप विधान की दृष्टि से जिनका विस्तार महाकाव्यानुरूप है । दूसरे प्रकार के खण्डकाव्य हमने वे माने हैं जिनका काव्य रूप महाकाव्य के समान तो नहीं परन्तु जो किसी लम्बी प्रबन्धात्मक कविता या काव्य निबंध से भिन्न मध्यम आकार की प्रबन्ध रचनाएं हैं जिनकी शैली विषय की आवश्यकता के अनुरूप समाख्यानात्मक वर्णनात्मक, विचारात्मक या विश्लेषणात्मक, अथवा भावात्मक है । इसके अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार उन रचनाओं का है जिनकी गणना उनकी प्रबन्धात्मकता और कथा तत्व को देखकर खण्डकाव्यों में की जाती है, परन्तु वस्तुतः उसमें एक खण्डकाव्य न लेकर प्रसंग मात्र को ग्रहण किया गया है ।'[2]

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ० 207 डा० निर्मला जैन

2- वही पृ० 208

महाकाव्य-

काव्य की समस्त विधाओं में महाकाव्य की रचना अपेक्षाकृत कठिन और कष्ट साध्य कार्य है । महाकाव्य शब्द स्वयं में ही महत रचना का संकेत देता है उसमें यह महत्ता विचारगत और भावगत तो होती ही है शब्द और शिल्पगत भी होती है ।महाकाव्य के संबंध में सर्वप्रथम संस्कृत के आचार्य भामह ने अपने विचार व्यक्त किये हैं । काव्यालंकार में उन्होंने लिखा है-

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्चयत् ।
अग्राम्य शब्दमर्थ्यं च सालंकार सदाश्रयम ।
मंत्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ।।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।।[1]

उनके अनुसार काव्य की छः संबंधी विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1- सर्गबद्धता
2- अग्राम्य अर्थात नागर पदावली तथा अलंकृति ।
3- जीवन के विविध पक्षों व घटनाओं का अंकन ।
4- नाट्य-सन्धियों का सद्भाव ।
5- अति व्याख्या का अभाव दूसरे शब्दों में सघन एवं प्रभावान्विति
6- ऋद्धिमत्ता ।

भामह के उपरान्त आचार्य दण्डी ने महाकाव्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं किन्तु उन्होंने महाकाव्य की परिभाषा में स्थूल नियमों और

1- काव्यालंकार 1-19,20 पृ0 3

गौण तत्वों को जोड़ने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया । आचार्य दण्डी के लक्षण पन्द्रहवीं शताब्दी तक मान्य रहे । पन्द्रहवीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण की रचना की तथा विभिन्न आचार्यों के साथ साथ महाकाव्य पर भी मौलिक विचार व्यक्त किये किन्तु मे डा० शम्भूनाथ सिंह की दृष्टि से सातवीं शताब्दी में होने वाले आचार्य रुद्रट के विचार इस संबंध में उक्त आचार्यों से भिन्न तथा अधिक पुष्ट है - किन्तु दण्डी के बाद सातवीं शताब्दी के दूसरे महान आचार्य रुद्रट ने महाकाव्य की जो परिभाषा अपने काव्यालंकार में दी है, वह संस्कृत के अन्य किसी आलंकारिकों से बहुत कुछ भिन्न तथा महाभारत, रामायण और प्राकृत-अपभ्रंश के महाकाव्यों को भी ध्यान में रखकर बनाई गयी प्रतीत होती है । यही नहीं रुद्रट की महाकाव्य-संबंधी मान्यता यूरोपीय सम्प्रदायों के लक्षणों को भी पूर्णतया व्यक्त करती है -------रुद्रट के महाकाव्य संबंधी लक्षण यूरोपीय वीरकाव्यों के लक्षणों से भी मिलते हैं क्योंकि उन्होंने नायक और प्रतिनायक दोनों का वर्णन दोनों का परस्पर युद्ध और नायक की विजय को बहुत महत्व दिया है और उसमें अवान्तर कथाओं का होना भी एक लक्षण बताया है । अन्य बातें उन्होंने दण्डी के समान ही रखी है । रुद्रट की परिभाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें युग जीवन के विविध रूपों पक्षों और घटनाओं को चित्रित करने की बात बहुत स्पष्ट रूप में और विस्तार के साथ कही गयी है अतः इस परिभाषा को मानने पर केवल खाना पूरी करने वालों का काम किसी प्रकार नहीं चल सकता था । सम्भवतः इसीलिए दण्डी और विश्वनाथ कविराज की परिभाषाओं का जितना प्रचार हुआ उतना भामह और रुद्रट की परिभाषा का नहीं, क्योंकि भामह ने तो सूत्र में महाकाव्य के मूल तत्वों को कह दिया था और रुद्रट ने उनका पूरा

विश्लेषण ही दे दिया जिसे पूरा पूरा अपना कर चलना सामन्ती युग के दरबारी कवियों के लिए सम्भव नहीं था।[1]

डा0 सिंह के विचार से रुद्रट की परिभाषा की सबसे बड़ी विशेषता महाकाव्य के क्षेत्र की विस्तृति है। उन्होंने महाकाव्य में युग के विविध पक्षों और घटनाओं के चित्रण की बात बहुत ही स्पष्ट और विस्तार से व्यक्त की है। डा0 सिंह के अनुसार रुद्रट की परिभाषा में उल्लिखित लक्षण इस प्रकार हैं-

1- महाकाव्य में उत्पाद्य या अनुत्पाद्य कोई लम्बी पद बद्ध कथा होती है।

2- उसमें प्रसंगानुकूल अवान्तर कथाएँ होती हैं, अर्थात उसमें पुराण कथा आख्यायिका के भी तत्व होते हैं,

3- कथा सन्धियुक्त और नाटकीय तत्वों से युक्त होती है।

4- उसमें जीवन की समग्रता का चित्रण होता है और किसी प्रधान घटना जैसे युद्ध या धार्मिक कार्य के आश्रय से अलंकृत वर्णन प्रकृति चित्रण और विभिन्न नगरों देशों और भुवनों (स्वर्गादि) के वर्णन का विधान होता है।

5- उसमें प्रतिनायक और उसके कुल का वर्णन भी होता है।

6- उसमें अन्त में नायक की ही विजय दिखाई जाती है, प्रतिनायक की नहीं।

1- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ0 51-53 डा0 शम्भूनाथ सिंह

7- उत्पाद्य महाकाव्यों में प्रारम्भ में सज्जनादि वर्णन और नायक के वंश की प्रशंसा होती है ।

8- उसमें अलौकिक और अति प्राकृत तत्व होते हैं पर मनुष्य कृत असंभव या अस्वाभाविक घटनाएं नहीं होतीं ।[1]

संस्कृत आचार्यों की परम्परा में आचार्य विश्वनाथ के अंतिम आचार्य हैं जिन्होंने महाकाव्यों के लक्षण स्पष्ट किये हैं । उनके द्वारा की गयी परिभाषा पूर्ववर्ती आचार्यों की परिभाषाओं से पर्याप्त परिष्कृत परिवर्तित और परिवर्द्धित है । विश्वनाथ ने महाकाव्य में शिल्प संबंधी निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया है-

कथानक-

1- महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक प्रख्यात व कल्पनाश्रित होती है ।

2- कथा में (क) सन्ध्या, सूर्य, रजनी, दिवस, प्रातः मध्यान्ह, मृगया ऋतु, पर्वत, वन, सागर- अर्थात प्राकृतिक जीवन का विस्तृत वर्णन होना चाहिए ।

(ख) संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ यात्रा, युद्ध आदि का अर्थात सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए ।

1- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० 53-54 डा० शम्भूनाथ सिंह

(ग) युद्ध, प्रयाण, अभ्युदय, मन्त्रणा- अर्थात जीवन के राजनैतिक पक्ष का भी यथास्थान वर्णन होना चाहिए।[1]

शैली-

शैली की दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ ने न तो चरित्र का उल्लेख ही किया है और न ही विशेष रूप से रस का। केवल उन्होंने कुछ वर्णन रूढ़ियों का ही उल्लेख करके अपने कर्तव्य की इति श्री कर दी है। उनके द्वारा उल्लिखित वर्णन रूढ़ियाँ इस प्रकार हैं-

क- आरम्भ में आशीर्वाद नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होना चाहिए।

(ख) कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-कथन होता है।

(ग) प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द प्रयुक्त होता है जो अन्त में बदल जाता है। उन्होंने इस विशेषता को अनिवार्य नियम न बनाकर तुरन्त ही अपवाद स्वीकार करते हुए कहा कि कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। उक्त कथन का अभिप्राय यही है कि यद्यपि विश्वनाथ के समक्ष विद्यमान महाकाव्यों में सर्ग में एक ही छन्द के प्रयोग की प्रधानता थी, परन्तु कुछ ऐसे ग्रन्थ भी थे जिनमें छन्द वैविध्य होने पर भी उनको महाकाव्य माना जा सकता था। इस प्रकार यह महाकाव्य का प्रमुख एवं अनिवार्य लक्षण नहीं है।

1- सा०द०6/225, षष्ठ परि० आ० विश्वनाथ.

(घ) सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए ।

(ड0) महाकाव्य का नामकरण कवि, चरित्र या चरितनायक के नाम से होना चाहिए, परन्तु कहीं कहीं इसके अपवाद भी स्वीकार्य है, सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नामकरण किया जाता है । इन्हें सर्गों को आख्यान आश्वास, कुड़क आदि भी काव्य और भाषा-भेद से कहा जाता है ।'[1]

अंग्रेज भाषा के विद्वानों में एबर क्रॉम्बी सी0एम0बावरा, ए0एम0 मैकेन्जी, कर्टन, थामसन ग्रीन रोड, डब्लू पी0 केर, हानसान, व टिलयार्ड आदि इन सभी विद्वानों ने महाकाव्य की पृथुता को स्वीकार करते हुए शैलीगत औदात्य पर विशेष बल दिया है । पाश्चात्य समीक्षकों के विचारों का सार डा0 निर्मला जैन ने इस प्रकार व्यक्त किया है-'

पाश्चात्य मनीषियों द्वारा महाकाव्य की समग्रता अन्तस्त गुरु गम्भीर वृहद् काव्य के रूप में स्वीकार किया गया, यह अभी तक प्रस्तुत किये गये विवेचन से सर्वथा स्पष्ट है । महाकाव्य में रूप सम्बन्धी बाह्य व औपचारिक विशेषताओं पर इन विद्वानों ने इतना बल नहीं दिया जितना उसकी अनिवार्य और प्रमुख विशेषताओं पर उनकी दृष्टि में महान कथानक उसी विस्तार और वैविध्य तर्क सम्मत जटिलता, नाट्य गुण, जीवन की समग्रता का अन्तर्भाव, वृहद आकार और उदात्त शैली ही महाकाव्य की अनिवार्य

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ0 66 डा0 निर्मला जैन.

विशेषताएँ है। इनके अतिरिक्त छन्द-प्रयोग आदि से संबंधित जो कतिपय रूढ़ियाँ कुछ समय के लिए स्थिर हो गयी थीं, आधुनिक युग तक आते आते कवियों ने उनकी नितान्त अवहेलना कर दी और प्रयोगों के आधार पर इस काव्य रूप की परिभाषाएं भी परिवर्तित हो गयी।[1]

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द विधाएं पृ0 90, डा0 निर्मला जैन.

द्वितीय अध्याय

दर्शन का स्वरूप

द्वितीय अध्याय

दर्शन का स्वरूप

भारतीय दर्शन की विशेषताएँ

भारतीय दर्शन के विचार बिन्दु

जीव

जगत

ईश्वर

माया

मोक्ष

मोक्ष के साधन

दर्शन का स्वरूप

'दर्शन' शब्द दृश् (दृशिर् प्रेक्षण) धातु से करण अर्थ में ल्युट् (अन) प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाय' सामान्यतः देखने का अर्थ चक्षुरिन्द्रिय से किन्तु यहाँ अभीष्ट चक्षुरिन्द्रिय से देखना नहीं है। श्री पारसनाथ द्विवेदी के शब्दों में - 'दृश धातु का प्रेक्षण अर्थ है। प्रेक्षण से तात्पर्य है प्रकृष्ट रूप में देखना। अतः ज्ञान-दृष्टि या दिव्य दृष्टि' से देखना ही दर्शन शब्द का अभिप्राय है। इस आधार पर जिसके द्वारा 'तत्वदर्शन' या 'आत्मदर्शन' हो उसे दर्शन कहते हैं। उपनिषद्काल में इस आत्मदर्शन के अर्थ में दर्शन शब्द का प्रयोग होने लगा था और उस समय 'आत्म दर्शन' ही एक मुख्य दर्शन हो गया था। शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध 'ईशावास्योपनिषद' में लिखा है कि 'सुवर्ण के पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है। हे पूषन! आप इस आवरण को हटा दीजिए, जिससे सत्य का दर्शन हो सके।' इस श्लोक में दृष्टये' शब्द दर्शन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'छान्दोग्योपनिषद' में भी दर्शन शब्द का आत्म दर्शन' अर्थ में प्रयोग हुआ है। मनु और याज्ञवल्क्य ने आत्मदर्शन को सम्यग्दर्शन या आत्म दर्शन' के अर्थ में प्रयोग किया है वस्तुतः सत्य (ब्रह्म) का दर्शन' अथवा अपने सच्चे स्वरूप को पहचानना ही दर्शन कहा जा सकता है। जैन दर्शन में इसे सम्यग्दर्शन और बौद्ध दर्शन में सम्यक्दृष्टि के नाम से अभिहित किया गया है।'[1]

प्राकृतिक, भौतिक या आध्यात्मिक जगत के बहुत से तत्व अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उन्हें चर्मचक्षुओं से देख पाना असम्भव है। अतएव दर्शन का तात्पर्य ज्ञान

1- भारतीय दर्शन पृ0 1, श्री पारसनाथ द्विवेदी.

प्राप्त करना ही उचित है । श्री उमेश मिश्र भी इस विचार की पुष्टि करते हैं । उनके विचार से, यह स्मरण रखना चाहिए कि स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के पदार्थ-दर्शन शास्त्र के विषय और परमतत्व की प्राप्ति के लिए दोनों का साक्षात्कार आवश्यक है । इसलिए चार्वाक, न्याय, वैशेषिक आदि स्थूल दृष्टि वाले दर्शनों में स्थूल पदार्थों के तथा सांख्य-योग वेदान्त आदि सूक्ष्म दृष्टि वाले दर्शनों में सूक्ष्म पदार्थों के देखने के लिए उपाय कहे गये हैं किन्तु यहां यह कह देना उचित होगा कि सूक्ष्म पदार्थों के देखने के लिए प्रत्येक मनुष्य में एक विशेष चक्षु होता है, जिसे साधारणतया 'प्रज्ञाचक्षु' ज्ञान चक्षु आदि लोग कहते हैं । गीता में भी विश्वरूप को देखने के लिए भगवान ने अर्जुन को 'दिव्यचक्षु' ही दिया था । बहुत ही तपस्या करने पर या भगवान के अनुग्रह से इसका उन्मीलन होता है जब एक बार यह चक्षु खुल जाता है तो फिर उस व्यक्ति को इस चक्षु के द्वारा सभी सूक्ष्म पदार्थ हथेली पर आंवले की तरह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं । दर्शन के लिए इन दोनों प्रकार के चक्षुओं में दृश् धातु की अपेक्षा होती है स्थूल तत्वों को स्थूल नेत्र तथा सूक्ष्म तत्वों को सूक्ष्म नेत्रों से हम देखते हैं यही कारण है कि उपनिषदों में दृश् धातु ही प्रयोग किया है । और यही भाव भारतीय दर्शन के 'दर्शन' शब्द में भी है । बिना साक्षात् प्रत्यय के किसी भी तत्व का ज्ञान निश्चित रूप से नहीं हो सकता है ।[1]

प्रसिद्ध दार्शनिक डा० राधाकृष्णन दर्शन शब्द का अर्थ अन्तर्ज्ञानात्मक अनुभूति से प्राप्त होने वाली तथा तर्क से समर्थित होने वाली विचार प्रणाली के रूप में करते हैं-

"The term 'Darshan' comes from the

1- भारतीय दर्शन, पृ० 6, डा० उमेश मिश्र.

word also to see. This seeing may be either perceptual observation or conceptual knowledge or institutional experience ----- perhapes the world institutional. The world is advisedly used to indicate a thought system acquired by intutive experience and sustand by logical argument."[1]

ये दर्शन को अत्यन्त व्यापक बताते है उनकी दृष्टि से यह ऐसा शब्द है जो अपनी शब्दात्मक किन्तु सुन्दर व्यापकता के कारण चिन्तन की समस्त गूढ़ प्रेरणाओं का प्रतीक है । वे यह भी मानते हैं कि यह शब्द जहां एक ओर अद्वैतवाद का प्रबल समर्थक है वहीं दूसरी ओर स्वसंवेदनात्मक सत्य का परिचायक भी है ।

दर्शन की भिन्न भिन्न परिभाषाएं हो सकती है और इस संबंध में विचारकों के मत में विभिन्नता भी है किन्तु भारतीय आचार्यों ने इस शास्त्र को समस्त धर्मों तथा विद्याओं के आधार के रूप में स्वीकार किया है।

जहाँ तक दर्शन की मौलिक प्रेरणा से तात्पर्य है- यह सत्यान्वेषण पर आधारित है । सृष्टि के अन्तरंग बहिरंग को लेकर मानव मन को जो अनेकात्मक जिज्ञासायें उत्पन्न होती रही है, दर्शन ने उनका समाधान करने का प्रयास किया है और इस समाधान का आधार है मूलभूत सत्य का दर्शन, अन्वेषण । अतः दर्शन की जिज्ञासा ही दर्शन की जड़ है ।[2]

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो की यह धारणा है कि दर्शन का जन्म आश्चर्य से होता है । ये जिज्ञासा से फैलता है । यह जिज्ञासा जब बालक के बढ़े

1- Introduction to Philosophy . P 43 - Dr. RadhaKrishnan.

2- प्रसाद वाङ्मय की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ0 19-20, श्री कामेश्वर श्रीवास्तव

word also to see. This seeing may be either perceptual observation or conceptual knowledge or institutional experience ------ perhapes the world institutional. The world is advisedly used to indicate a thought system acquired by intutive experience and sustand by logical argument."[1]

वे दर्शन को अत्यन्त व्यापक बताते है उनकी दृष्टि से यह ऐसा शब्द है जो अपनी शब्दात्मक किन्तु सुन्दर व्यापकता के कारण चिन्तन की समस्त गूढ़ प्रेरणाओं का द्योतक है । वे यह भी मानते हैं कि यह शब्द जहां एक ओर अद्वैतवाद का प्रबल समर्थक है वहीं दूसरी ओर स्वानुभूत्यात्मक सत्य का परिचायक भी है ।

दर्शन की भिन्न भिन्न परिभाषाएं हो सकती है और इस संबंध में विचारकों के मत में विभिन्नता भी है किन्तु भारतीय आचार्यों ने इस शास्त्र को समस्त धर्मों तथा विद्याओं के आधार के रूप में स्वीकार किया है।

जहाँ तक दर्शन की मौलिक प्रेरणा से तात्पर्य है यह सत्यान्वेषण पर आधारित है । सृष्टि के अन्तरंग बहिरंग को लेकर मानव मन को जो अनेकात्मक जिज्ञासायें उत्पन्न होती रही है, दर्शन ने उनका समाधान करने का प्रयास किया है और इस समाधान का आधार है मूलभूत सत्य का दर्शन, अन्वेषण । सत्य दर्शन की जिज्ञासा ही दर्शन की जनक है ।[2]

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो की यह धारणा है कि दर्शन का जन्म आश्चर्य से होता है । वे जिज्ञासा से जोड़ता है । यह जिज्ञासा जब बालक के

---

1. Introduction to Philosophy . P 43 - Dr. Radhakrishnan.

2. प्रसाद का शिल्प की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ0 19-20, श्री जगदीश श्रीवास्तव

होने पर यह कुतूहल ज्ञान और जिज्ञासा मे परिवर्तित होती है तब वह दार्शनिक बन जाता है "Some children and some grown ups are very thoughtful and reflective; they wonder what the world is, how it come to be, what is it made of, what it is for. When theirs wonder begins to be serious and systematic enquiry, they are philosophers. Plato said that philosophy begins in wonder."1

मानवता और जिज्ञासा गहन रूप से अन्तर्सम्बन्धित है। संसार का चाहे कोई भी कार्य व्यापार हो उसके प्रति जिज्ञासा का भाव आवश्यक रूप से उत्पन्न होता है। मानव का ज्ञान या अज्ञान विवेक प्रतीक स्वभाव और व्यवहार जिज्ञासा द्वारा ही उद्भूत और उसी से सम्पृक्त है। डा० कामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव ने विभिन्न दार्शनिकों की विचारधाराओं पर विचार करने के उपरान्त दर्शन के स्वरूप के संबंध मे इस प्रकार विचार व्यक्त किये है।

जिज्ञासा ही दार्शनिक को चिन्तनरत करती है। जानना ही उसकी प्रवृत्ति है। दार्शनिकों के हृदय में सत्य ज्ञान के प्रति एक मोह, एक भावावेश होता है और वे विश्व के रहस्य को जानने के लिए कठोर प्रयत्न करते हैं। विवश परिश्रमरत रह कर और रातें जागकर व्यतीत करते है तथा अन्त में उसे ज्ञान का व्यक्त करते हैं।

भारतीय विचारकों की भी यही धारणा है। 'जिज्ञासा' को वे दार्शनिक चिन्तनों की मूल प्रेरणा के रूप में स्वीकार करते है। उपनिषदों मे आत्मज्ञान की महत्ता का सविस्तार प्रतिपादन किया है। जिमर महोदय का

1- Introduction to Philosophy P. 3 Dr. Radhakrishnan

कहा है कि वैदिक दर्शन का सत्य सृष्टि की आधारभूत खोज का रहा है । इस खोज की दो दिशायें प्राप्त होती है । वैदिक ऋषियों ने एक ओर विश्व की भासित होने वाली अनेकता की मूलभूत सत्ता का अन्वेषण किया और दूसरी ओर व्यक्ति गत जीवन की शक्तियों के मूल पर विचार किया । श्री हिरियान महोदय 'जिज्ञासा का मौलिक भारतीय रूप 'भयात्मक श्रद्धा' मानते है जिसकी प्रेरणा से प्राचीनतम स्तुतियों का उद्भव हुआ ।[1]

सत्य के प्रति जिज्ञासा का भाव उसकी तुष्टि और शंकाओं के निवारण के साथ-साथ दर्शन एक बौद्धिक आवश्यकता बनी है । संसार के सभी सुसंस्कृत देशों में दर्शन के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य हुए है । प्रसिद्ध दार्शनिक श्री हटलनीक भी इसे न्यूनतम बौद्धिक आवश्यकता मानते है । दर्शन वस्तुतः समन्वय का एक महान प्रयास होता है । दार्शनिक दृष्टि से लौकिक समस्याओं का कोई अर्थ नहीं नहीं होता है । दर्शन सत्य पर आधारित है अतः वह लौकिक भेद विभेद के पचड़े में नहीं पड़ता है । डॉ राधाकृष्णन के भी विचार कुछ इसी प्रकार के है - उन सभी तर्क सम्मत प्रयासों को जो विश्व के संबंध में फैली विभिन्न बिखरी हुयी धारणाओं को कुछ महान व्यापक विचारों में समेटने के लिए किये गए, दर्शन की संज्ञा दी जाती । ये समस्त प्रयास सभी सत्य के किसी न किसी अंश को अनुभव कराने में सहायक सिद्ध होते है । इनका यह विचार था कि प्रकट रूप में पृथक व स्वतंत्र प्रतीत होते हुए भी ये सब दर्शन वस्तुतः एक ही वृहत ऐतिहासिक योजना के अंग है ।'[2]

1- प्रसाद साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ0 20-21, डा0 चन्दोला

2- भारतीय दर्शन भाग दो पृ0 16- डा0 राधाकृष्णन

दर्शन का स्वरूप बहुत ही व्यापक है इसके अध्ययन क्षेत्र में जितना भी कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है वह तो है ही जो कुछ नहीं दिखाई देता वह भी है। इसकी अन्वय कारिणी दृष्टि विश्व एकात्म्य पर आधारित है तथा विराट भावना का पाठ पढ़ाती है। अनेकता इसका प्रमुख तत्व है जिसके कारण जीव जगत माया ब्रह्म, मोक्ष आदि पर अलग-अलग चिंतन करने के बाद भी इसका चरम गंतव्य लक्ष्य इससे च्युत नहीं होता।

भारतीय दर्शन की विशेषताएं

भारतीय दर्शन का विकास विभिन्न परम्पराओं एवं सम्प्रदायों के रूप में देखा जाता है। भारतीय दर्शन प्रायः 6 भागों में विभक्त है किन्तु सभी विद्वान इस विचारधारा से सहमत नहीं है। आचार्य शंकर ने सर्व सिद्धान्त संग्रह, नामक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में लोकायत, आर्हत, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक मीमांसा, सांख्य, पातंजल, व्यास और वेदान्त आदि दस दर्शन सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार षड् दर्शन, समुच्चय के रचयिता जिनदत्त सूरि ने जिन 6 दर्शन का निर्देश किया है वे है- जैन, बौद्ध, मीमांसा, सांख्य, शैव और नास्तिक। माधवाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह में सोलह प्रकार के भारतीय दर्शनों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार जयन्त भट्ट ने भी 6 आस्तिक व 6 नास्तिक दर्शनों विवेचन किया है।

भारतीय दर्शनों को विशेषताओं के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। वेद को प्रमाण न मानने वाले दर्शनों को नास्तिक कहा गया है। दर्शन सामान्यतः तीन प्रकार के है- चार्वाक, जैन और बौद्ध, आस्तिक दर्शनों में मुख्य रूप से सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का परिगणन होता है। दर्शनों को निम्न प्रकार विभाजित किया है-

आस्तिक

चार्वाक जैन माध्यमिक योगाचार सौत्रान्तिक वैभाषिक

न्याय वैशेषिक सांख्य योग मीमांसा वेदान्त
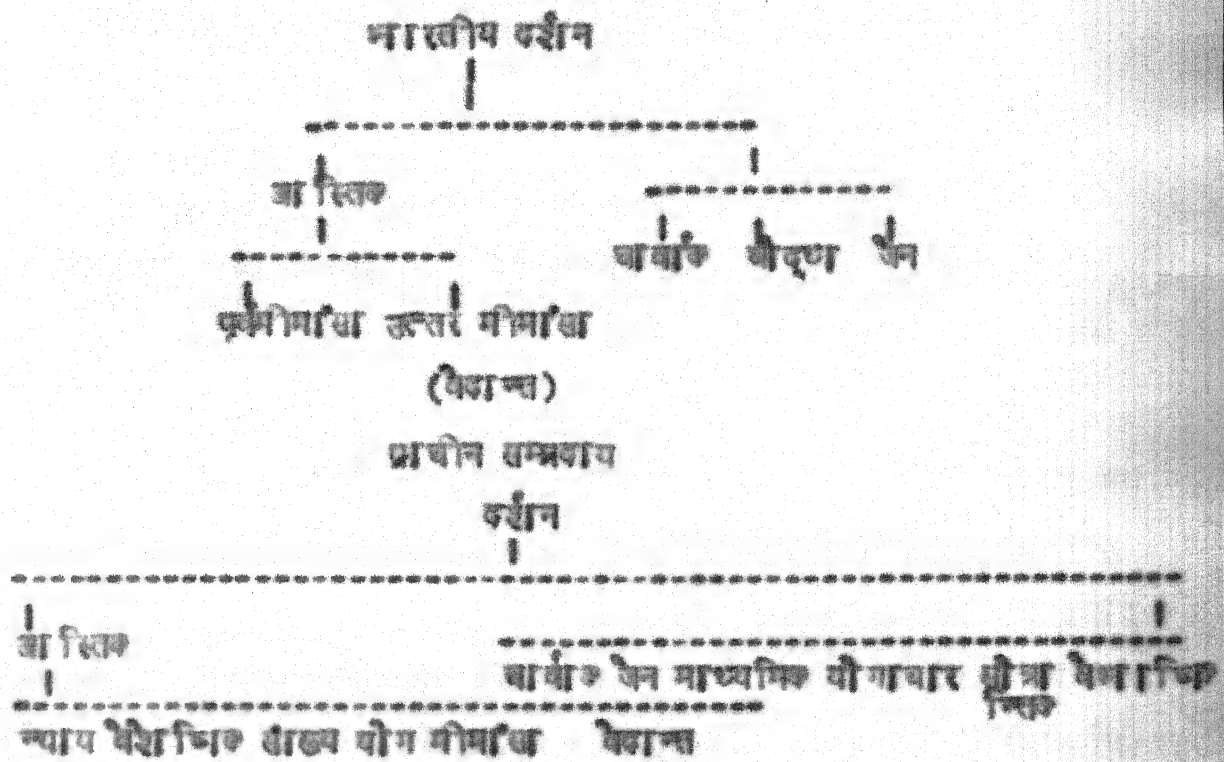
भारतीय दर्शन की एक मात्र विशेषता यह है कि यह निरतिशय दुःख से मुक्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति का साधन उपलब्ध करता है। भारतीय दर्शन तीन प्रकार के दुःखों का उल्लेख करते हैं- आधि भौतिक, अधि दैविक और आध्यात्मिक। भगवान बुद्ध ने इन त्रिविध दुःखों की मुक्ति के लिए चार सत्यों का अन्वेषण किया - दुःख का समुदाय, दुःख समुदाय का कारण दुःख निरोध तथा दुःख निरोध का मार्ग। अन्य भारतीय दर्शन भी इसी दृष्टिकोण को आधार मानकर दुःख निरोध का उपाय प्रस्तुत करते हैं। भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

---

1- भारतीय दर्शन पृ05 श्री वाचस्पति,

1- दुःख तथा दुःख का कारण
2- मोक्ष व उसका उपाय
3- कर्मवाद पर बल
4- पुनर्जन्म स्वीकारोक्ति
5- आत्मा का नित्यत्व.

1-दुःख व उसका कारण-

अधिकांश भारतीय दार्शनिकों का विचार है कि यह संसार दुःख मय तथा मिथ्या है। संसार का प्रत्येक प्राणी इस महादुःख में फंसा हुआ है किन्तु विवेकी जन इसके दुःखमय स्वरूप को समझते हुए इससे मोक्ष प्राप्त करने का उपाय करते हैं। श्री पारसनाथ के अनुसार समस्त दार्शनिक सम्प्रदाय इस विषय में एकमत दिखाई देते हैं कि यह जन्म-मरणात्मक जगत दुःख मय है। भले ही तत्व विवेचन में उनका दृष्टिकोण अलग अलग हो। सांख्य दर्शन के अनुसार समस्त पदार्थ सुख-दुःख मोहात्मक है, क्योंकि कि वे त्रिगुणात्मक हैं। यही त्रिगुणात्मक संसार बन्धन कहा जाता है, जिसका कारण अज्ञान है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है। इस प्रकार के अज्ञान की निवृत्ति विवेक ज्ञान से होती है।[1]

2-मोक्ष व उपाय-

भारतीय दर्शन ग्रन्थों में अविद्या या अज्ञान की स्थिति के नाश को मोक्ष की संज्ञा दी गयी है। चार्वाक दर्शन में मृत्यु को मोक्ष माना गया है जबकि बौद्ध दर्शन निर्वाण को मोक्ष मानता है। उनके अनुसार दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है और ज्ञान के उदय द्वारा ही निर्वाण की प्राप्ति होती है। दर्शन आत्मा की विशुद्धावस्था को मोक्ष मानता है। इसी प्रकार सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान को मोक्ष कहा गया है। योग दर्शन के अनुसार

1- भारतीय दर्शन पृ0 4- श्री पारसनाथ.

चिति शक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित होने का नाम ही मोक्ष है। न्याय व वैशेषिक के अनुसार आत्मा की स्वरूप में विनिर्मुक्त स्थिति मोक्ष है। मीमांसा दर्शन भी आत्मा की स्वाभाविक स्थिति को मोक्ष मानता है। वेदान्त दर्शन आत्मा और परमात्मा के एकीभाव को मोक्ष स्थिति बताता है। कुछ सिद्धान्त ये सभी दर्शन संसार रूपी अविद्या या अंधकारिता के विनाश पर ही बल देते हैं और उसी माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं। भारतीय दर्शनों की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है।

3- कर्मवाद पर बल-

अधिकांश भारतीय दर्शनों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे कर्म सिद्धान्त को शाश्वत मानते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार हम जो भी शुभ या अशुभ कर्म करते हैं उनका फल भी निश्चित रूप से भोगना पड़ता है। भारतीय दर्शन यह मानते हैं कि कर्मानुसार ही आत्मा शरीर ग्रहण करता है भारतीय दर्शनों में केवल चार्वाक दर्शन ही एक ऐसा है कि यह कर्म सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार 'संसार की व्यवस्था प्रकृति के नियमों के अनुसार होती है। जिस व्यवस्था के कारण सूर्य,चन्द्र और नक्षत्र अपने-अपने कर्तव्य के प्रति संलग्न हैं, दिन-रात का चक्र घूमता रहता है। इस व्यवस्था को वेदों में 'ऋत' नाम से अभिहित किया गया है। सारा विश्व इसी 'ऋत' पर आधारित है और 'ऋत' से ही गतिमान है। उपनिषदों में यह कर्म के नियम को नैतिक नियम के रूप में स्वीकार किया गया है। संसार में मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है। बृहदारण्यकोपनिषद् एवं छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि मानव शुभ कर्म करने से धार्मिक बनता है और अशुभ कर्म करने से पापी बनता है। न्याय-वैशेषिक आदि आस्तिक दर्शनों के अनुसार ये शुभाशुभ कर्म ही धर्माधर्म (अदृष्ट) को उत्पन्न करते हैं जिससे हमें सुख-दुःख रूपी फल भोग करना पड़ता है।'[1] इस प्रकार कर्म का फल अवश्य तथा

1- भारतीय दर्शन- पृ05, पारसनाथ द्विवेदी.

उसके फल का निश्चित विश्वास भारतीय दर्शन की एक प्रमुख विशेषता है ।

4- पुनर्जन्म में आस्था-

कर्मवाद के आधार पर भारतीय दर्शन 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' को शाश्वत सत्य मानता है । भारतीय दार्शनिकों का विचार है कि जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के उपरान्त जन्म होता है । जीवात्मा को कर्मों का फल भोग अनिवार्य है दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ गीता में तो कहा गया है जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराना शरीर छोड़ता है और नया शरीर धारण करता है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरो पराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।[1]

भारतीय दर्शनों में एक मात्र चार्वाक दर्शन ही ऐसा है जिसकी पुनर्जन्म के सिद्धान्त में कोई आस्था नहीं है ।

आत्मा का नित्यत्व

प्रायः सभी भारतीय दर्शन आत्मा को नित्य तथा अजर अमर मानते हैं । भारतीय चिन्तकों और दार्शनिकों का विचार है कि आत्मा न कभी मरता है न कभी जीता है । यह अछेद्य ही अभेद्य अक्लेद्य अशोष्य है । श्रीपारस नाथ द्विवेदी के अनुसार 'चार्वाक को छोड़कर प्रायः सभी दार्शनिक आत्मा के

1- श्री भगवद्गीता 2/22

अस्तित्व को स्वीकार करते हैं । न्यायवैशेषिक आत्मा को नित्य एवं अविनाशी मानता है । इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान ये आत्मा के 6 विशेष गुण हैं । आत्मा कर्ता भोक्ता, एवं ज्ञाता है । न्यायवैशेषिक मत में चैतन्य आत्मा का स्वरूप नहीं है । जब आत्मा मन एवं शरीर से युक्त होता है तब उसमें चैतन्य की उत्पत्ति होती है । मीमांसा दर्शन भी इसी प्रकार आत्मा को नित्य एवं विभु मानता है और चैतन्य को उसका आगन्तुक धर्म वेदान्त दर्शन आत्मा को विशुद्ध सच्चिदानन्द रूप मानता है । सांख्य में आत्मा (पुरुष) को नित्य एवं विभु माना गया है । चैतन्य ही उसका स्वरूप है । सांख्य मत में पुरुष (आत्मा) अकर्ता और सुख-दुःख की अनुभूतियों से रहित है । बौद्ध ज्ञान, अनुभूति और संकल्पों की प्रत्येक क्षण में परिवर्तित होने वाली विज्ञान-सामान्य सन्तान को मानते हैं । जैन दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु वह आत्मा को अणु और विभु के मध्य में स्वीकार करता है । जब कि रामानुज, माध्व और वल्लभ सम्प्रदाय वाले जीव को अणु और न्याय वैशेषिक सांख्य योग एवं वेदान्त दर्शन उसे विभु मानते हैं ।'[1]

<u>भारतीय दर्शन के विचार बिन्दु</u>

भारतीय दर्शन का कार्य क्षेत्र बहुत ही व्यापक है । यह मुख्य रूप से जीव ईश्वर जगत माया, मोक्ष तथा मोक्ष के साधनों पर विचार करता है ।

<u>जीव</u>

ब्राह्मण ग्रन्थों में जीवात्मा शब्द का प्रयोग है और यह आत्मन् शब्द का वाचक है । आत्मन शब्द 'अन्' प्राण से धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्राण । आचार्य शंकर आत्मन शब्द की व्युत्पत्ति का निर्देश इस प्रकार करते हैं-

---

1- भारतीय दर्शन पृ06, श्री पारसनाथ द्विवेदी.

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ।।[1]

तात्पर्य यह है कि सर्वत्र व्याप्त सबको अपने में ग्रहण करने वाला, विषयों का उपभोक्ता तथा निरंतर भाववान रहने के कारण ही यह आत्मा है। कठोपनिषद में कहा गया है- यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न स्वयं किसी से हुआ है और न इससे कोई हुआ है, यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरता है। यह अणु से भी छोटा तथा महान से भी महान है। यह सभी प्राणियों की हृदय रूपी गुहा में स्थित है। इसकी महिमा को कामना रहित और शोक रहित साधक परमेश्वर की कृपा से ही देख पाते हैं-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।[2]

× × ×

अणोरणीयान्महतो महीयाना-
त्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।[3]

1- कठोपनिषद, शांकर भाष्य 2/1/1
2- कठोपनिषद 1/2/18
3- वही 8/7/1

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद में इन्द्र और प्रजापति के सम्वाद द्वारा आत्मा के स्वरूप प्रकाश डाला गया है । वहाँ प्रजापति कहते हैं कि आत्मा वह है जो पाप से रहित है, वृद्धावस्था से रहित है, क्षुधा और प्यास से रहित है, जो सत्यकाम है वही जानने और अनुभव करने योग्य है ।'[1]

माण्डूक्योपनिषद में विशुद्ध आत्मा को 'तुरीय' की संज्ञा दी गयी है । वहाँ आत्मा की चार अवस्थाएँ बताई गयी हैं- जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । जाग्रत अवस्था में जीव बाह्य पदार्थों का स्वप्नावस्था में आभ्यान्तर जगत का सुषुप्ति में परमानन्द का तथा तुरीयावस्था में विशुद्ध चैतन्य का अनुभव करता है ।

भारतीय दर्शनों में से चार्वाक दर्शन यह मानता है कि पृथ्वी जल, तेज और वायु आदि के विकार का शरीर में चैतन्य रहता है । यह शरीर से ही उत्पन्न होता है और शरीर के नष्ट होते ही स्वतः नष्ट हो जाता है । बृहदारण्यकोपनिषद में भी इस प्रकार के विचार मिलते हैं । आत्मा के सम्बन्ध में चार्वाक दर्शन में चार प्रकार के मत हैं- शरीरवादी, इन्द्रियवादी, प्राणवादी तथा मनवादी ।

इसी प्रकार जैन दर्शन के अनुसार जब आत्मा सांसारिक अवस्था में आता है तब उसे जीव कहा जाता है । जीव का लक्षण चैतन्य है- चैतन्य दर्शन के अनुसार के लक्षणो जीव[2] श्री पार्श्वनाथ ने लिखा है कि जैन दर्शन के अनुसार जीव ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है । वह ज्ञान और दर्शन से युक्त है । सांख्य दर्शन में जीव '(पुरुष) को अकर्ता,अभोक्ता,निष्क्रिय और तटस्थ कहा गया है ।

1- छान्दोग्योपनिषद 8/7/1

2- षड दर्शन समुच्चय 8/7/1

है। मत में जीव कर्ता है, वह अपने कर्म फलों का भोक्ता है, वह सुख दुःख का अनुभव करता है। सांख्य पुरुष के समान वह निष्क्रिय नहीं बल्कि सक्रिय है और कर्म करने में स्वतंत्र है, वह स्वयं ही अपने कर्मों का कर्ता है, अविद्या के कारण कर्म बन्धन में पड़ता है, वह नित्य परिणामी है, संकोच और विकास के गुणों से युक्त है जिसके कारण वह छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा आकार धारण कर सकता है। जो दीपक जिस प्रकार के छोटे या बड़े कमरे में रखा रहता है, उसको पूर्ण प्रकाश करता है उसी प्रकार यह जीव भी जिस प्रकार के छोटे या बड़े आकार में प्रवेश करता है उसी के रूप में भासित होता है।[1]

भारतीय दर्शनों में न्याय-वैशेषिक के अन्तर्गत आत्मा के दो रूप बताये गए हैं- परमात्मा और जीवात्मा। तर्क संग्रह और वैशेषिक सूत्र में बताया गया है कि ज्ञान के अधिकरण को आत्मा कहते हैं।[2] आत्मा का विशेष गुण चैतन्य है। प्राण, अपान निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति, इन्द्रियान्तर विकार सुख दुःख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, चैतन्य (आत्मा) के सूचक चिह्न हैं।[3] आत्मा नित्य द्रव्य है। परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और एक है। जीवात्मा अनेक हैं। प्रत्येक शरीर में रहने वाला जीवात्मा नित्य और विभु है-

> ज्ञानाधिकरणमात्मा स द्विविधः -परमात्मा
> जीवात्मा चेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मैक एव।
> जीवात्मा प्रति शरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ॥[4]

1- भारतीय दर्शन पृ0 55-56 -पारसनाथ द्विवेदी.
2-तर्क संग्रह 16
3-वैशेषिक सूत्र 3/2/4
4-तर्क संग्रह 16

इसी प्रकार मीमांसा दर्शन[1] के अनुसार आत्मा को बुद्धि और इन्द्रियों से भिन्न तत्व स्वीकार करते हैं। यह मत विशेष रूप से जैमिनि का है। शाबर आत्मा को शरीर, प्राण, बुद्धि और इन्द्रियों से भिन्न नित्य तथा विभु पदार्थ मानते हैं। उनके अनुसार आत्मा स्व संवेद्य है। इस प्रकार प्रभाकर आत्मा को शरीर, बुद्धि और इन्द्रियों से भिन्न मानते हैं। उनके मत में आत्मा नित्य विभु और अनेक है

बुद्धीन्द्रिय शरीरेभ्यो, भिन्नात्मा विभुर्ध्रुवः ।
नानाभूतः प्रतिक्षेत्रमर्थवित्तिषु भासते ।।[2]

मीमांसा दर्शन में कुमारिल भट्ट का मत है कि आत्मा शरीर, बुद्धि और इन्द्रियों से पृथक है। यह नित्य, विभु, चैतन्य एवं अनेक है। यह ज्ञाता कर्ता, भोक्ता एवं ज्ञान, सुख दुःख द्वेष इच्छा संस्कार प्रयत्न धर्म और अधर्म का आश्रय है। कुमारिल की विशेषता यह है कि वे ज्ञान को आत्मा का गुण नहीं मानते हैं बल्कि उसका परिणाम मानते हैं।[3]

भारतीय दर्शनों में अद्वैत का प्रमुख महत्व है। इस दर्शन के अनुसार आत्मा परमतत्व एवं देश, काल, निमित्त से परे है। वह केवल एक रस तथा स्वयं सिद्ध है। वह प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता। आत्मा नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त, अजर, अमर और अद्वैत से भिन्न और एकाकी है[4]। शंकराचार्य के अनुसार अस्ति आत्मा जीवाख्यः शरीरेन्द्रिय पञ्जराध्यक्षः कर्म फलों का उपभोक्ता आत्मा जीव है। आत्मा जब बुद्धि अहंकार मन इन्द्रिय और शरीर की उपाधियों से परि ४०१ हो जाती है तब वह जीव

1- मीमांसा सूत्र 1/1/4
2- सर्वसिद्धान्तसार संग्रह।
3- श्लोकवार्तिक आत्मवाद
4- शांकर भाष्य 2/3/17

हो जाता है । जीव शरीर और अन्तःकरण आदि उपाधियों से युक्त है । अविद्या में प्रतिबिम्बित चैतन्य ही अविद्या के परतंत्र होने से जीव होता है । अविद्याजन्य सत्वादि गुणों के वैचित्र्य से जीव अनेक प्रकार का होता है ।[1] अविद्या के वशीभूत होने के कारण यह अल्पज्ञ है तथा मलिन सत्व प्रधान अहंकारादि से सम्पृक्त होता हुआ जीवन और मरण के दुःख का उपभोक्ता है । जीव के संबंध में श्री पारसनाथ ने अद्वैत दर्शन संबंधी विचारों को इस प्रकार स्पष्ट किया है- 'अविद्या की उपाधि से युक्त जीव साक्षीरूप आत्मा है । अन्तः[2] करण के साथ तादात्म्य संबंध होने से वह कर्ता एवं भोक्ता होता है । वह प्रत्येक शरीर पृथक्-पृथक् रूप से विद्यमान है अतः अनेक है यदि वह एक होता तो एक के सुख-दुःखादि की अनुभूति होने पर सभी शरीरस्थ जीवों को सुख होगी किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता । अतः जीव एक नहीं अनेक है ।

जीव की तीन अवस्थाएं हैं - जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति । अन्नमय कोश रूप स्थूल शरीर का अभिमानी जीव जाग्रतावस्था में विश्व कहा जाता है मनोमय प्राणमय एवं विज्ञान मय कोशात्मक सूक्ष्मशरीर का अभिमानी जीव की स्वप्नावस्था होती है स्वप्नावस्था में यह तैजस कहलाता है । सुषुप्ति अवस्था में जीव आनन्दमय कोश स्वरूप कारण शरीर होता है और उक्त अवस्था में वह प्राज्ञ कहलाता है । उपनिषदों में प्राज्ञ शब्द परमात्मा के लिए प्रयुक्त किया गया है । शंकर ने प्राज्ञ शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि भूत, भविष्य का जाननेवाला तथा सम्पूर्ण विषयों का ज्ञाता होने से वह प्राज्ञ है । भूतभविष्यत्ज्ञा-तृत्वं सर्वविषयज्ञातृत्वमस्येति प्राज्ञः रजस और तमस् के प्रभाव से जीव का सत्वगुण दब जाता है अतः वह जागतिक विषयों को अधिक प्रकाशित नहीं कर पाता है ।

1- अविद्योपाधिको जीव एव साक्षात् दुःखत्वात् साक्षी, जीव स्यात् करणात्ता दात्म्यापत्त्या कर्तृत्वभोक्तृत्वेऽपि स्वप्रभुत्वहीनत्वात् ।

सिद्धान्त लेश भारतीय दर्शन डा० राधाकृष्णन में उद्धृत

इसलिए उसे 'प्राज्ञ' कहा जाता है । जीव माया की आवरण और विक्षेप नामक शक्तियों से आवृत्त रहता है । अतः जीव को अज्ञानी कहा गया है ।[1]

अद्वैत के बाद रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में चित का अर्थ है चेतन जीव' । श्री भाष्य के अनुसार जीव नित्य, सत्य, ज्ञान, अनन्त, स्वयं प्रकाश सर्वव्यापक, आनन्दरूप, अनामय और समस्त जगत का रचयिता पालनकर्ता और संहार कर्ता है । वह सविशेष और सगुण है ।[2] विशिष्टाद्वैत में जीव के तीन भेद हैं- बद्ध मुक्त और नित्यजीव इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त तक संसारी एवं बद्ध जीव है ।

रामानुज के बाद आचार्य माध्व ने भी जीव पर विचार किया है तथा इसे परमात्मा से भिन्न तथा अनेक माना है । उनके अनुसार प्रत्येक जीव का अपना अलग अस्तित्व और व्यक्तित्व है प्रत्येक जीव दूसरे से सर्वथा भिन्न है । जीव अज्ञान, मोह, दुःख भय आदि दोषों से युक्त होने के कारण संसार में परिभ्रमण करता है । जीव के तीन भेद हैं- मुक्ति योग्य, तमोयोग्य और नित्य संसारी । मुक्ति योग्य जीव देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा पुरुषोत्तम रूप से पाँच प्रकार के होते हैं । तमोयोग्य जीव दो प्रकार का होता है- चतुर्गुणोपासक और एक गुणोपासक । दुःख चार प्रकार के होते हैं- दैत्य, राक्षस, पिशाच और अधम मनुष्य । नित्य संसारी जीव कर्मानुसार स्वर्ग, नरक आदि लोकों में घूमते रहते हैं ।[3]

वेदान्त दर्शन के ही अन्तर्गत जीव की एक स्थिति अलग ढंग से रूप में मानी गयी है । इसे शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है । इस दर्शन के प्रणेता आचार्य

1- भारतीय दर्शन पृ० 309, पारसनाथ द्विवेदी.

2- श्री भाष्य 110

3- भारतीय दर्शन पृ०322- पारसनाथ द्विवेदी

वल्लभ है । वे यह मानते हैं कि जब ब्रह्म को स्वयं रमण करने की इच्छा होती है तब वह आनन्दादि गुणों को तिरोहित कर स्वयं अनेक रूपों में जीव का रूप धारण करता है । ब्रह्म जीव से अभिन्न है तथा अणुरूप है । जिस प्रकार अग्निकुण्ड से चिनगारियां अलग हो जाती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से जीव भी अलग हो जाता है ।[1] वल्लभ के अनुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं- शुद्ध मुक्त और संसारी ।

इसी प्रकार शैव दर्शन में भी जीवात्मा पर विचार किया गया किन्तु वहाँ इसे 'पशु' की संज्ञा दी गयी है । शैव दर्शन का पशु क्षेत्रज्ञ, अणु, विभु नित्य प्रकाशमान तथा अनेक है । इसके अनुसार यह जीव बन्धन तथा मोक्ष को प्राप्त होता है । अविद्या, कर्म और माया-ये तीन पाश (बन्धन) कहे गये हैं । इन तीनों पाशों से आबद्ध रहता है और जब इन त्रिविध मल रूप पाशों से उसकी मुक्ति हो जाती है तो वह परम ऐश्वर्य को प्राप्त होता हुआ शिव रूप हो जाता है ।

भारतीय दार्शनिकों में सन्तों का भी बड़ा महत्व है । किन्तु सन्तों की विचारधारा विभिन्न दार्शनिक विचारों का संगम स्थल है । सन्तों ने भी प्रायः जीवात्मा को ब्रह्म के अंश के ही रूप में स्वीकार किया है ।

सामान्यतः भारतीय दर्शन में जीवात्मा का स्वरूप उपर्युक्त प्रकार से ही निर्धारित किया गया है । जिन आधुनिक विद्वानों ने इस विषय पर अपने विचार व्यक्त भी किये हैं वे प्रायः पिष्टपेषण ही हैं तथा अपनी पुष्टि के लिए उन्होंने प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों का ही सहारा लिया है ।

1-अणु भाष्य पृ0181

भारतीय दर्शन में ईश्वर-

भारतीय दर्शन ग्रन्थों में परमतत्व के लिए कहीं ईश्वर कहीं भगवान और कहीं ब्रह्म शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म शब्द अपेक्षाकृत अधिक मान्य और अधिक प्रयुक्त है। उपनिषदों में प्रतिपादित परमतत्व परमतत्व को 'ब्रह्म' कहा गया है। यह ब्रह्म शब्द बृह् धातु से बना है जिसका अर्थ 'बढ़ना' होता है। आचार्य शंकर 'ब्रह्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'बृहति (अतिशय) से मानते हैं और उसका अर्थ शाश्वत एवं विशुद्धता करते हैं। माध्व के अनुसार जिसमें गुण पूर्ण रूप से रहते हैं उसे 'ब्रह्म' कहते हैं। (ब्रह्मोऽस्मिन गुणाः)। ऋग्वेद में ब्रह्म शब्द का स्तुति के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में 'ब्रह्म' शब्द का यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त होता था और ब्राह्मणों में यह शब्द सर्वव्यापिनी पवित्रता का बोधक हो गया। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत्, चित् और आनन्द रूप है। यह सब की आत्मा है और उसी से इस नामरूपात्मक जगत की सृष्टि होती है। तैत्तिरीयोपनिषद में एक उपाख्यान आया है कि वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता से प्रश्न करता है कि भगवान मुझे ब्रह्म का ज्ञान कराइये। तब वरुण ब्रह्म का उपदेश देते हैं कि जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जिसके द्वारा जीवित रहते हैं तथा अन्त में जिसके पास जाते हैं और जिसमें लीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म' है। उपनिषदों में 'ब्रह्म' के दो रूपों का निर्देश है- निर्गुण और सगुण निर्गुण ब्रह्म को परब्रह्म' कहा गया है। वह 'परब्रह्म' सच्चिदानन्द रूप और निरुपाधि होने से अनिर्वचनीय है। उसे ही तैत्तिरीयोपनिषद में सत्य, ज्ञान एवं अनन्त कहा गया है। (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) वह (ब्रह्म) रस (आनन्द) रूप है। उसे ही प्राप्त कर आत्मा आनन्दयुक्त हो जाता है। वह परब्रह्म रस है ([illegible] ब्रह्म) केनोपनिषद में परब्रह्म का सुन्दर विवेचन मिलता है, वहाँ बताया गया है कि जो वाणी से प्रकाशित नहीं होता किन्तु जिससे वाणी प्रकाशित होती है, उसी को तू ब्रह्म जान। उसे नहीं जिसकी लोग उपासना करते हैं। जिसे मन से नहीं जाना जा सका, बल्कि जिससे मन देखता है उसे तू ब्रह्म जान, उसे नहीं, जिसकी

लोग उपासना करते है जिसको कान से नहीं सुना जाता बल्कि जिसके द्वारा यह कान सुना जाता है, उसे ही तू ब्रह्म जानो , उसे नहीं जिसकी लोग उपासना करते है । जो प्राण के द्वारा प्रेरित नहीं होता, बल्कि प्राण जिसके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करता है , उसे ही तू ब्रह्म जान,उसे नहीं जिसकी लोग उपासना करते है । इस प्रकार वह ब्रह्म वाणी मन,चक्षु श्रोत्र,प्राण का विषय नहीं है, वह इनके क्षेत्र के बाहर का विषय है । इसी बात की पुष्टि मुण्डकोपनिषद के इस कथन से होती है कि वह ब्रह्म अदृश्य,अग्राह्य अनादि,रूप रंग से रहित और चक्षु एवं श्रोत्र से रहित है । मुण्डकोपनिषद मे उसे अक्षर (अविनाशी) आनंद का अजर और अमृत भी कहा गया है । बृहदारण्योपनिषद मे याज्ञवल्क्य गार्गी के प्रश्न का उत्तर देते हुए उस अक्षर ब्रह्म को अवाङमनस गोचर बताया है और कहा है कि वह परब्रह्म कार्य-कारण से रहित है । नेति नेति इस प्रकार वर्णित वह (आत्मा)अग्राह्य,अशीर्य(नष्ट होने वाला) असंग (संग रहित) है । इस प्रकार परब्रह्म गुणातीत निर्विशेष तथा अवाङमनस गोचर सिद्ध हो जा है ।[1]

भारतवर्ष के प्रायः सभी आस्तिक दर्शन ईश्वर की सत्ता और महत्ता को स्वीकार करते है किन्तु चार्वाक दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है । उनके अनुसार चार तत्वों के संयोग से स्वाभाविक रूप से जगत की उत्पत्ति हो जाती है । इसकी उत्पत्ति के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है । जगत की रचना के लिए ईश्वर की आवश्यकता को नकारते हुए वे कहते है । ईश्वर को जगत स्रष्टा नहीं मानता है वे इस संदर्भ मे प्रमाण देते है कि घट के निर्माता कुम्भकार का तो प्रत्यक्ष होता है ,किन्तु जगत स्रष्टा ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं होता । यदि ईश्वर को अशरीरी माना जाय तो वह जगत का कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि कुम्भकार बिना शरीर के घट का निर्माण नहीं करता है । जैन दर्शन के अनुसार जग का नाश नहीं होता और न ब्रह्मा से सृष्टि ही

1- भारतीय दर्शन पृ0 20-21, पारसनाथ द्विवेदी

सकती है । सृष्टि और विनाश तो पदार्थों के गुणों एवं प्रकारों के कारण होता है[1]।

जैन का यह भी विचार है कि मनुष्य ही अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से कैवल्य को प्राप्त हो जाता है । ईश्वर कोई विशेष व्यक्ति नहीं है ।

भारतीय दर्शनों में बौद्ध दर्शन आत्मा परमात्मा, जगत और लोक, परलोक आदि दार्शनिक विचारों का विवेचन न करके चार आर्य सत्यों का विवेचन करता है । महात्मा बुद्ध का विचार था कि जो वस्तु प्रत्यक्ष या ज्ञेय नहीं है, जिसके प्रतिपादन के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है उसके विषय में चर्चा करना समय नष्ट करना है ।

भारतीय दर्शनों में सांख्य का विशेष महत्व है । इस दर्शन में दो प्रमुख तत्व माने गये हैं प्रकृति और पुरुष ।

सांख्य दर्शन के आचार्यों ने ईश्वर के संबंध में दो मत व्यक्त किये हैं । कुछ विद्वानों का कहना है कि ईश्वर के न मानने के कारण सांख्य निरीश्वरवादी दर्शन है, दूसरे आचार्यों का मत है कि सांख्य सेश्वरवाद दर्शन है । इस प्रकार सांख्याचार्यों के मतानुसार सांख्यदर्शन के दो भेद मानेगए हैं एक सेश्वर सांख्य दूसरा निरीश्वर सांख्य । सेश्वर सांख्य ईश्वर को सर्वशक्तिमत्ता, सर्वेश्वर और सर्वव्यापक मानता है । उसका कथन है कि ईश्वर की कृपा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे पुरुष (जीव) सदा के लिए मुक्त होकर परमानन्द का अनुभव करता है । उपनिषदों के सांख्य दर्शन का स्वरूप सेश्वर ही प्रतीत होता है, क्योंकि उपनिषदों में प्रकृति और पुरुष के ऊपर एक ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की

1-षण्दर्शन सिद्धान्त सार ।5

गयी है । इसीप्रकार स्मृति, महाभारत तथा पुराणों में सेश्वर सांख्य का ही निरूपण हुआ है । कपिल से लेकर वार्षगण्य तक के सभी आचार्य ईश्वरवादी थे, किन्तु निरीश्वर सांख्य की परम्परा ईश्वर कृष्ण से प्रारम्भ होती है । कुछ आलोचकों का कहना है कि ईश्वर कृष्ण ने बौद्ध सिद्धान्तों के निरीश्वरवाद से प्रभावित होकर निरीश्वरवाद को ग्रहण किया है ।[1]

इसी प्रकार न्याय वैशेषिक दर्शन में वैशेषिक सूत्रकार महर्षि कणाद ने तो कहीं भी ईश्वर का उल्लेख नहीं किया किन्तु गौतम के न्याय सूत्र में ईश्वर का सामान्य वर्णन है । यों तो इस दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व पर नाममात्र को प्रकाश डाला गया है फिर भी प्रशस्तपाद के अनुसार ईश्वर अदृष्ट अधिष्ठाता सर्वज्ञ तथा एक है नित्य एवं निर्विकार परमाणुओं का अचेतन अदृष्ट इसी ईश्वर के निर्देशन में कार्य करता है ।

मीमांसा दर्शन में भी ईश्वर की सत्ता पर कोई बल नहीं है । मीमांसा के आचार्यों में जैमिनि कर्मफल प्रदाता के रूप में ईश्वर जैसी शक्ति की कल्पना की आवश्यकता नहीं अनुभव करते हैं उनके अनुसार कर्मफल तो यज्ञ से प्राप्त होता है । इसी प्रकार शबर जगत का निर्माण कर्ता किसी ईश्वर को नहीं मानते । उनके अनुसार जगत की सृष्टि प्राकृतिक है । वे यह भी नहीं मानते कि वेदों की रचना ईश्वर ने की है ।

अद्वैत दर्शन में ब्रह्म और ईश्वर पर पर्याप्त चिंतन है । यह दर्शन यह मानता है कि एक मात्र परमतत्व 'ब्रह्म' ही परमार्थ सत है । जब ब्रह्म माया से आच्छादित होकर सगुण का धारण करता है तो वह 'ईश्वर' नाम से जाना जाता है । इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म तत्व से परे संसार में कोई भी वस्तु सत नहीं है ।

1- भारतीय दर्शन, पृ0 158-59, डा0 पारसनाथ द्विवेदी

और अचित (जड़ जगत) दोनों से विशिष्ट है। जीव और जगत दोनों ब्रह्म के शरीर भूत रूप हैं। जगत कार्य है और ब्रह्म जगत का कारण है। रामानुज के मत में ब्रह्म ही ईश्वर है। वह ईश्वर ही अपने रूप में विश्व का निर्माण रक्षण और लय करता है। वह शाश्वत है------प्रलयकाल में वह क्रियाओं के अभाव में सूक्ष्म, अव्यक्त चित और अचित विशिष्ट रहता है, अतः कारण ब्रह्म कहलाता है।[1]

मध्वाचार्य के द्वैतदर्शन के अनुसार सर्व प्रकार से पूर्ण है तथा भगवान विष्णु ही परमात्मा हैं। वे अनन्त गुणों से पूर्ण हैं तथा मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों को धारण करते हैं। वे उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण बन्ध और मोक्ष आदि के विधायक हैं। द्वैत दर्शन के अनुसार परमात्मा सर्वज्ञ एवं विराट है। वह सर्व तत्त्व स्वतंत्र और एक तथा जीव, जड़, प्रकृति से नितान्त विलक्षण है।

बारहवीं शताब्दी में प्रचारित निम्बार्क दर्शन के अनुसार ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वज्ञ, अचिन्त्य, सर्वनियन्ता, स्वतंत्र व अमित ऐश्वर्य से युक्त है। वह अविद्यादि पंच क्लेशों से सर्वदा मुक्त रहता है और जगत का उपादान कारण भी है ही निमित्त कारण भी है। यह जगत ईश्वर का ही परिणाम है। वह विश्व का कल्याण करने के लिए ही अवतार धारण करता है।

भारतीय दर्शनों में शुद्ध शुद्धाद्वैत के आदि आचार्य वल्लभ ब्रह्म को माया के प्रपंच से रहित विशुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वधर्म विशिष्ट व सच्चिदानन्द का मानते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म जगत का उपादान और निमित्त कारण है। जगत उसका लीलामात्र है।

1- भारतीय दर्शन पृ० 319, श्री पारसनाथ द्विवेदी.

अन्य भारतीय दर्शनों में प्रमुख शैव दर्शन परम तत्व को परमशिव की संज्ञा देता है तथा यह मानता है कि वह सत् चित् आनन्द,प्रकाश,स्वातंत्र्य प्रधान स्वरूप है। परम शिव सर्वव्यापक,नित्य,अरूप और चैतन्य है। वह स्वेच्छया विश्व का कर्ता है तथा अनुग्रह,तिरोभाव,संहार,पालन एवं सृजन आदि कार्यों का कारण है। इस संसार में विश्व की क्षमता रखने वाला दूसरा कोई तत्व नहीं है। वह शिव और शक्ति दो रूपों में विभक्त होकर विश्व की सर्जना करता है।

भारतीय दर्शन और जगत-

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में प्रमुख उपनिषद जगत को मिथ्या मानते हैं। इस जगत के निर्माण एवं विनाश का मूल तत्व ब्रह्म है। ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है। यह नाम रूपात्मक जगत ब्रह्म का ही एक रूप है और ब्रह्म उसका कारण है। मुण्डकोपनिषद में कहा गया है-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥[1]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मकड़ी जाल को बनाती है और फिर अपने में समेट लेती है, जैसे पृथ्वी में औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जैसे पुरुष के केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं उसी भाँति अक्षर ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति होती है। तैत्तिरीयोपनिषद में भी इस भाव को व्यक्त किया गया है-उस परमात्मा (ब्रह्म)से प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु,वायु से अग्नि,अग्नि से जल,जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ,औषधियों से अन्न,

---

1-मुण्डकोपनिषद 1/1/7

अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुआ ।[1] उपनिषदों के अनुसार यह जगत और इसकी सृष्टि व प्रलय आत्मा का ही परिणाम है ।

भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों में से चार्वाक मतावलम्बी जगत की सत्यता पर विश्वास रखते है तथा भोग को महत्वपूर्ण मानते है । चार्वाक ने लिखा है- पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्वानि । तत्समुदाये शरीरेन्द्रिय विषय संज्ञा"[3] तात्पर्य यह है कि पृथ्वी जल तेज और वायु इन चार तत्वों के यथोचित संयोग से शरीर,इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों की संज्ञा होती है।

चार्वाक दर्शन के अनुसार उक्त चार तत्व ही जगत के उपादान कारण हैं । चार्वाक आकाश तत्व को स्वीकार नहीं करता है क्योंकि आकाश तत्व भी अग्नि आदि की भाँति प्रत्यक्ष नहीं होता है । चार्वाक उक्त चार तत्वों के आकस्मिक संयोग से ही सृष्टि की रचना मानते है ।

चार्वाक दर्शन की ही भाँति जैन एवं बौद्ध दर्शन भी ईश्वर में आस्था न रखकर जगत की नित्यता पर ही विचार करता है । जैन दर्शन के अनुसार यह समस्त विश्व जीव और अजीव (जड़) इन दो भागों में विभक्त है । ये दोनों ही तत्व सद अस्तित्व वाले होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं । उनमें जीव ज्ञान रूप है और अजीव अज्ञान रूप (अजीवात्मकतत्व बोध)[2] । जीव भोक्ता है और अजीव भोग्य है । जीव ज्ञाता है और अजीव ज्ञेय है । जीव चेतन है और अजीव अचेतन यह अजीव द्रव्य पुद्गल भौतिक तथा मूर्त द्रव्य है । शेष धर्म,अधर्म,आकाश और काल अमूर्त द्रव्य है । इनमें काल एक प्रदेश में रहने के कारण अनस्तिकाय है और पुद्गल,[4] धर्म, अधर्म,आकाश - ये चारों असंख्य प्रदेशों में रहने के कारण अस्तिकाय है ।

1- तैत्तिरीयोपनिषद 2।1

2- बार्हस्पत्य सूत्र

3- सर्वदर्शन सं0 पृ0145

4- भारतीय दर्शन पृ097, डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी.

भारतीय दर्शनों में सांख्य का विशेष महत्व है। सांख्य दर्शन में प्रकृति सबसे महत्वपूर्ण तत्व है यह संसार का मूल कारण है इसे मूल प्रकृति भी कहते हैं। सृष्टि के आरंभ में स्वतंत्र प्रवृत्ति वाली एक मात्र मूल प्रकृति ही विद्यमान थी। आरंभ में यह सत्व, रज और तम की साम्यावस्था में थी। इस साम्यावस्था का अन्त पुरुषों के प्रभाव के कारण होता है। पुरुष कोई ऐसा प्रभाव डालता है कि जिससे गुणों की साम्यावस्था भंग हो जाती है और प्रकृति में परिणाम होना आरंभ हो जाता है।'[1]

सांख्य दर्शन के अनुसार जगत का प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है - कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है।

भारतीय दर्शनों में न्याय वैशेषिक-

दर्शन परमाणुओं के संयोग से जगत की रचना मानते हैं। पारसनाथ द्विवेदी ने सांख्य की सृष्टि संबंधी धारणा स्पष्ट करते हुए लिखा है - न्याय वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं से जगत की उत्पत्ति होती है। जब परमेश्वर की सृष्टि विषयक इच्छा होती है तो सर्वप्रथम वायु के परमाणुओं में स्पन्दन होता है और दो परमाणु परस्पर मिलते हैं। इन परमाणुओं के संयोग से 'द्वयणुक' की उत्पत्ति होती है। परमाणु और द्वयणुक दोनों ही अतीन्द्रिय होते हैं। इसके बाद तीन द्वयणुकों के संयोग से 'त्र्यणुक' (त्रसरेणु) की उत्पत्ति होती है। त्रसरेणु महत्परिमाण वाला होता है और उसका प्रत्यक्ष होता है। उसके पश्चात चार त्रसरेणु महत्परिमाण वाला होता है और उसका प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार चतुरणुक आदि की उत्पत्ति परम्परा से महावायु उत्पन्न होती है।

1- भारतीय दर्शन पृ० 147

महावायु की उत्पत्ति के पश्चात तैजस परमाणुओं में स्पन्दन होता है और उसी क्रम से जल महाभूत की उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार पार्थिव परमाणुओं के संयोग से तेज महाभूत की उत्पत्ति होती है इस प्रकार चारों महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर के ध्यान मात्र से पार्थिव और तैजस परमाणुओं से हिरण्मय पिण्ड उत्पन्न होता है जिसे हिरण्यगर्भ कहते हैं । उस हिरण्यगर्भ से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । उन्हें ही 'पितामह' कहा गया है । उससे बुद्धि और अहंकार का जन्म हुआ उसी को मन कहा गया है । उस चेतन परमेश्वर के संकल्प से जगत की सृष्टि होती है । और क्रमशः मनु,देवता, ऋषि पितर मनुष्य ,पशु, पक्षी,कीट पतंग आदि जीवों की सृष्टि होती है ।[1]

भारतीय दर्शन में अद्वैत का विशिष्ट महत्व है । इस दर्शन के अनुसार सृष्टि का विधान कार्यकारण सिद्धान्त पर आधारित है । इस मत के आधार पर माया की दो शक्तियाँ होती हैं । आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति । इन दोनों शक्तियों से आच्छन्न चैतन्य जगत की सृष्टि का कारण है । यह मायावच्छिन्न चैतन्य ही अपनी जगत की सृष्टि का कारण है । यह मायावच्छिन्न चैतन्य ही अपनी प्रधानता से जगत का निमित्त कारण है और अपनी उपाधि भूत अज्ञान की प्रधानता से उपादान कारण है । जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला बनाने के लिए किसी बाह्य वस्तु की अपेक्षा नहीं रखती बल्कि उसी बिना ही स्वयं तन्तुओं से जाल का निर्माण कर लेती है और अपने में समेट लेती है । वह अपनी प्रधानता से निमित्त और शरीर की प्रधानता से 'उपादान' कारण होती है, उसी प्रकार यह माया विशिष्ट चैतन्य भी बिना किसी की सहायता के स्वयं जगत की सृष्टि कर देता है । इस प्रकार यह जगत का उपादान और निमित्त कारण भी है ।

1- भारतीय दर्शन पृ0 260-पारसनाथ द्विवेदी.

वेदान्त दर्शन में सृष्टि के दो रूप बताये गये हैं- समष्टि रूप और व्यष्टि रूप । माया में सत्वगुण प्रधान रहता है । और रजोगुण और तमोगुण अप्रधान होते हैं तब शुद्ध सत्व प्रधान उत्कृष्ट उपाधि से आवृत चैतन्य समष्टिरूप ईश्वर कहलाता है । यह ईश्वर मायाका स्वामी होने से सर्वज्ञ,सर्वशक्तिमान और व्यापक होता है । यह समष्टि रूप ईश्वर समस्त सृष्टि का कारण होने से कारण शरीर' है ,आनन्द के आधिक्य से युक्त एवं कोश के समान चैतन्य का आच्छादक होने से इसे आनन्दमय' कोश कहते हैं । जब रजस एवं तमस से अभिभूत होने के कारण सत्वगुण मलिन हो जाता है तब मलिन सत्व प्रधान निकृष्ट उपाधि से उपहित चैतन्य व्यष्टिरूप 'प्राज्ञ (जीव) कहलाता है । यह जीव माया के पराधीन होने के कारण 'अल्पज्ञ' होता है । इस जीव की उपाधि भूता व्यष्टि भी 'कारण शरीर(कही जाती है । आनन्द का आधिक्य होने से और चैतन्य का आच्छादक होने से इसे आनन्दमय कोश कहते हैं । ईश्वर औरजीव में ये दोनो मायोपाहित चैतन्य की सूक्ष्मतम अवस्थाएं हैं । इनमें समस्त सूक्ष्म एवं स्थूल प्रपंचों का लय होता है । अतः इसे सुषुप्ति भी कहते हैं । सुषुप्ति में स्वप्न और जागरण के विलीन हो जाने पर ईश्वर और जीव दोनों अज्ञान से अभिभूत होकर आनन्द का अनुभव करतेहैं । वस्तुत ईश्वर और जीव दोनो एक हैं, उपाधि भेद से अलग अलग प्रतीत होते हैं ।[1]

वेदान्त दर्शनों के विशिष्टाद्वैत वादी ईश्वर की माया शक्ति से सृष्टि की उत्पत्ति मानतेहैं । ये माया को प्रकृति भी कहते हैं । इस दर्शन के आदि आचार्य रामानुज शंकर की भांति सृष्टि को मिथ्या नहीं मानते हैं ।

द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्याचार्य जगत का उपादान करण प्रकृति को मानते हैं । उनके अनुसार परमात्मा केवल निमित्त है उसकी अध्यक्षता में प्रकृति ही सर्व

1- भारतीय दर्शन पृ0 202 पारसनाथ द्विवेदी

करती है । प्रकृति त्रिगुणात्मिका परिणामिनी जड़ अव्यक्त और व्यापक है । इसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है ।

द्वैताद्वैतवाद के आचार्य निम्बार्क ने सृष्टि सम्बन्धी अचित तत्वों को तीन भागों में बांटा है- प्राकृत, अप्राकृत और काल । उनके अनुसार महत से लेकर ब्रह्माण्ड तक समस्त पदार्थ प्राकृत है । प्रकृति से अतिरिक्त तत्व अप्राकृत है तथा प्राकृत और अप्राकृत से भिन्न तत्व काल है ।

आचार्य वल्लभ के अनुसार यह जगत ब्रह्माण्ड रूप है किन्तु ब्रह्म की जगतात्मक स्थिति में चैतन्य और आनन्द तिरोहित हो जाता है केवल सत्ता की ही अभिव्यक्ति होती है । वे जगत को न तो ब्रह्म का विवर्त ही मानते हैं और न ही परिणाम । उनके अनुसार जगत सत् है । इसका आविर्भाव और तिरोभाव होता है ।

शैवदर्शन के अनुसार संसार की रचना शिव द्वारा होती है । उनके अनुसार इस सृष्टि में अविद्या, कर्म और माया तीन पाश है तथा जीव इन्हीं में आबद्ध रहता है । प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार भी परमशिव अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत की सृष्टि करता है । उनके अनुसार यह जगत यथार्थ है केवल शिव की सत्ता ही यथार्थ है ।

भारतीय दर्शन और माया-

माया का अर्थ है नहीं है जो अर्थात नहीं में हाँ का आभास करने वाली शक्ति का नाम ही माया है । उपनिषदों में इस जगत को मिथ्या कहा गया है कि तथा इसके मिथ्यात्व में भी सत्यात्व की प्रतीति करने वाली शक्ति को माया नाम दिया गया है । उपनिषद यह मानते हैं कि समस्त दृश्यमान जगत ब्रह्म है, जीव भी ब्रह्म ही है आत्मा और परमात्मा में पार्थक्य नहीं है। किन्तु माया के कारण जीव अपने में स्वरूप को भूल जाता है अतएव माया भ्रम कारिणी है ।

चार्वाक दर्शन माया का अस्तित्व नहीं स्वीकार करता है क्योंकि वह यह मानता है कि जगत सत्य है अतएव माया जैसी कोई वस्तु नहीं है । चार्वाकों के अनुसार जब के दुःख की आशंका से सुख का त्याग करना मूर्खता है । चार्वाकों के अनुसार जैन और बौद्ध दर्शन भी मिथ्या कुछ नहीं मानते है । अतएव उन्होंने माया का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है । वह यह मानते है कि सृष्टि या प्रलय एक प्रकार का विकार है और ईश्वर अविकारी तथा कूटस्थ है अतएव इस जगत की रचना पर विचार है उसकी माया जैसी कोई शक्ति कार्य नहीं कर सकती है ।

भारतीय दर्शनों में योग की भी उचित रूप में माया पर विचार नहीं करता है । इस दर्शन में पञ्च क्लेश या अविद्या पर विचार डाला गया है । क्लेश विपर्यय रूप है । विपर्यय का अर्थ है मिथ्या ज्ञान अविद्या मिथ्या ज्ञान है । ये क्लेश पांच प्रकार के हैं- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । अविद्या ही इन क्लेशों का मूल कारण है । प्रसुप्त तनु, विच्छिन्न और उदार इन चार प्रकार के अस्मिता आदि की प्रसव भूमि है । वस्तुतः अस्मिता आदि चारों क्लेश अविद्या के भेद हैं । इन चारों क्लेशों के अवस्था भेद प्रसुप्त तनु, विच्छिन्न और उदार हैं । -----वैराग्याभ्यास से कमित राग तनु है । उदार अवस्था ही प्रवृत्ति है । इन सबका मूल कारण अविद्या है । अनित्य वस्तु में नित्य का ज्ञान अपवित्र में पवित्रता का ज्ञान, दुःख में सुख का ज्ञान और अनात्म में आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है । दृग्शक्ति (पुरुष) और दर्शन शक्ति (बुद्धि) को एक जानना अविद्या है ।[1]

भारतीय दार्शनिकों में न्याय वैशेषिक के समर्थक भी सृष्टि के निर्माण में उचित माया का योगदान न मान कर ईश्वर की इच्छा शक्ति

1- भारतीय दर्शन पृ0 169 डा0 पारसनाथ द्विवेदी.

और तज्जन्य क्रिया शरीरता को हेतु मानते हैं । उनके अनुसार प्रलय के समय द्रव्य परमाणु रूप में स्थिति हो जाते हैं, उनका विनाश हो जाता है किन्तु परमाणु सुरक्षित रहते हैं, क्योंकि परमाणु नित्य सूक्ष्म एवं निरवयव है ।

मीमांसा दर्शन माया का उल्लेख 'बन्ध' के रूप में करता है । मीमांसा में तीन बन्धन स्वीकार किये हैं । ये आत्मा को बन्धन में डालते हैं । शास्त्र दीपिका के अनुसार ये बन्ध तीन हैं- भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रियां और भोग विषय शब्दादि विषय तथा रूप आदि -'त्रेधा हि प्रपंच पुरुषं बध्नाति-भोगायतन शरीरम्, भोगसाधनानि इन्द्रियाणि, भोग्याः शब्दादयो विषयाः ।'[1] इन बंधनों के कारण ही आत्मा विभिन्न प्रकार के कष्टों को सहता है तथा दुःख सुखादि कष्टों का उपभोग करता है । यह स्थिति ही भव बन्धन है और इसके कारण ही जन्म-मरण का चक्र घूमता है ।

माया का विशेष रूप से उल्लेख अद्वैतदर्शन में हुआ है । आचार्य शंकर के अनुसार परमेश्वर की शक्ति का नाम माया है इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र परम तत्व तथा सत् है । उससे भिन्न जगत की समस्त वस्तुएं असत् तथा मिथ्या हैं । माया के द्वारा ही भ्रमात्मक जगत की सृष्टि हुयी है । वेदान्त मत में ईश्वर की शक्ति अविद्या अज्ञान व मिथ्याज्ञान आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है । ऋग्वेद, श्वेताश्वतरोपनिषद व गीता आदि में भी माया को अनेक रूप धारण करने वाली और प्रकृति स्वरूप कहा गया है-

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।[2]

× ×

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम् ।[3]

1- शास्त्रदीपिका 157

2- ऋग्वेद 6/47/18

3- श्वेताश्वतरोपनिषद 4/9/10

डा0 पद्मनाभ ने लिखा है-' शंकर के अनुसार माया न तो ब्रह्म है न तो ब्रह्म के समान पदार्थ है और न शशशृंग के समान अपदार्थ ही है। यह माया परमेश्वर की बीज शक्ति है। इस अविद्यात्मिका बीजशक्ति को अव्यक्त कहा जाता है। यह माया परमेश्वर के आश्रित रहने वाली महासुषुप्तिरूपिणी है जिसमें अपने स्वरूप को न जानने वाले संसारी जीव शयन करते हैं। यह माया 'सत्' और 'असत्' दोनों से परे अनिर्वचनीय है। इसे न 'सत्' कह सकते हैं और न असत्। यदि इसे सत् कहते हैं तो इसका बाध कभी भी नहीं होना चाहिए जबकि तत्वज्ञान से इसका बाध देखा जाता है। यदि असत् कहते हैं तो वन्ध्यापुत्र के समान उसकी कभी प्रतीति नहीं होगी क्योंकि असत् वस्तु की कभी प्रतीति नहीं होती। (सच्चेन्न बाध्येत असच्चेन्न प्रतीयेत) इसे सदसत् अर्थात उभयरूप भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि सत और असत के परस्पर विरोधी होने के कारण ऐसा कहना अनुचित है। अतः इसे दोनों से विलक्षण अनिर्वचनीय कहना चाहिए इसी बात को श्वेताश्वतरोपनिषद में इस प्रकार कहा गया है कि यह माया न सत है न असत है और न उभयरूप है बल्कि सदसत्' से अनिर्वचनीय मिथ्याभूत है। विवेकचूडामणि में बताया गया है कि यह माया न सत है न असत है और उभयरूप है। यह ब्रह्म से न भिन्न है न अभिन्न है और न उभयरूप है। यह न अंग सहित है न अंग रहित है और न उभयरूप है। यह अत्यन्त अद्भुत अनिर्वचनीया है।

यह माया त्रिगुणात्मिका है अर्थात सत्वरजस्तमो रूपा है। प्रकृति भी त्रिगुणात्मिका है किन्तु सांख्य की प्रकृति स्वतंत्र है और माया स्वतंत्र नहीं बल्कि ईश्वर के आश्रित है यह ईश्वर की एक शक्ति है और जगत का कारण है। यह माया ज्ञानविरोधी भावरूप पदार्थ है। अभावरूप नहीं, क्योंकि ज्ञान से माया की निवृत्ति होती है। यदि अभावरूप है तो उसकी माया निवृत्ति कैसी ? भावरूप होने पर ही निवृत्ति सम्भव है अतः माया भावरूप है। इस प्रकार माया को सदसदुभयरूप से विलक्षण अनिर्वचनीया कहा जा सकता है।[1]

1- भारतीय दर्शन पृ0297-98-डा पद्मनाभ द्विवेदी.

विशिष्टाद्वैत के अनुसार भी माया ईश्वर की शक्ति है । इसमें अद्भुत पदार्थ उत्पन्न करने की क्षमता है । ईश्वर अपनी इस शक्ति के द्वारा ही सृष्टि रचना करता है इस मत के प्रधान आचार्य रामानुज माया को प्रकृति भी कहते हैं । जिसके दो रूप हैं शुद्ध सत्व और मिश्र सत्व । इस मत के मानने वाले सृष्टि को मिथ्या नहीं मानते हैं । उनके अनुसार सृष्टि और जगत सत्य है ।

द्वैत दर्शन के आचार्य मध्व के अनुसार प्रकृति द्वारा ही जगत का निर्माण किया जाता है यह त्रिगुणात्मिका, परिणामिनी, जड़ अव्यक्त और व्यापक है ।

आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म जब रमण करने की इच्छा करता है तो वह आनन्दादि गुणों को तिरोहित कर जीव का धारण करता है । इस प्रक्रिया में वह माया का अवलम्ब लेता है । वल्लभ के अनुसार यह जग सत है ।

भारतीय दर्शनों में शैवाचार्यों ने माया का 'पाश' नाम दिया है तथा इसके तीन प्रकार माने हैं अविद्या, कर्म और माया ।

शैवमत अविद्या को आणवमल कर्म को कर्ममल तथा माया को मायामल नाम देता है । इस मत के अनुसार पाश चार प्रकार के होते हैं मल, कर्म, माया, रोध शक्ति । इनमें से माया उसे कहते हैं जिसमें प्रलय काल में जीव समाहित हो जाते हैं और जिससे सृष्टि काल में जीव आविर्भूत होते हैं । प्रत्यभिज्ञ दर्शन के अनुसार भी सृष्टि के निर्माण का हेतु परमशिव की माया शक्ति ही है ।

भारतीय दर्शन और मोक्ष

भारतीय दर्शन ग्रन्थों में उपनिषद ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा पुनरागमन से मुक्त हो जाने को ही मोक्ष मानते हैं। उपनिषद के अनुसार इस परम पद को प्राप्त कर लेने के उपरान्त आत्मा सुख-दुख, हानि लाभ के बंधनों से दूर होकर मृत्युभय से मुक्त हो जाती है तथा अमृतत्व को प्राप्त करती है। इस स्थिति के प्राप्त होने पर हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती हैं, समस्त संशय विनष्ट हो जाते हैं कर्मक्षीण हो जाते हैं और आत्मा ब्रह्ममय हो जाता है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।[1]

उपनिषद तीन प्रकार के मोक्षों का निरूपण करते हैं क्रममुक्ति, सद्योमुक्ति और जीवन्मुक्ति जब आत्मा क्रमिक उत्थान द्वारा देवयान मार्ग से ब्रह्म लोक में ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त करती है तब उसे क्रम मुक्ति कहते हैं। शुद्ध आत्मा जब ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाती है और अन्यत्र कहीं नहीं जाती तब उसे सद्योमुक्ति कहते हैं- न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्नोति ।[1] इसी प्रकार जब ब्रह्म निष्ठ आत्मज्ञानी मरण से पूर्व ही मुक्ति का अनुभव कर लेता है तब जीवन्मुक्त स्थिति प्राप्त कहा जाता है। गीता ने इस स्थिति को ब्राह्मी स्थिति कहा है।

भारतीय दर्शनों में चार्वाकों के अनुसार मरण ही मोक्ष है। (मरणेव मोक्षः) इस दर्शन के आचार्यों का मत है कि जब दुःखों की निवृत्ति ही मोक्ष है तब सब दुःखों का आधार यह शरीर विनष्ट हो जायगा तो मोक्ष स्वतः प्राप्त हो जायेगा। उनके अनुसार वस्तुओं का उपभोग स्वर्ग, दुःख भोग नरक और देह त्याग मरण है।

1- बृहदारण्यकोपनिषद 4/4/6

नास्तिक दर्शनो मे जैन दर्शन के अनुसार बन्धो का अवरोध कर देने पर नये कर्मों के अभाव होने से और निर्जरा को करना के उद्देश से पूर्व कर्मों के विनाश होने से समस्त कर्मों की जो आत्यन्तिक मुक्ति होती है उसे ही मोक्ष कहते हैं। मोक्ष दो प्रकार की होती है- भाव मोक्ष और द्रव्य मोक्ष। इस मत के अनुसार ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातीय कर्मों का क्षय 'भाव मोक्ष और तथा आयु नाम गोत्र व वेदनीय आदि चार अघातीय कर्मों का क्षय द्रव्य मोक्ष है। मोक्ष से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त वीर्य और अभिव्यक्त हो जाते है तथा मुक्त हुआ जीव ईश्वर व सर्वज्ञ हो जाता है।[1]

भारतीय दर्शनो मे बौद्ध दर्शनानुयायियों का परम उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति है। भगवान बुद्ध के उपदेशो का उद्देश्य भी जीवों को निर्वाण की प्राप्ति कराना है। अन्य भारतीय दर्शनो की भाति यह दर्शन भी दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति पर बल देता है।

सांख्यदर्शन के अनुसार अविद्या का विनाश ही मोक्ष है। इसकी प्राप्ति होने पर त्रिविध दुःखो की आत्यन्तिक हानि हो जाती है। समस्त दुःख समाप्त हो जाते है। सांख्य कारिका मे दुखो की आत्यन्तिक निवृत्ति को कैवल्य कहा गया है। तत्वसमास मे त्रिविध मोक्ष बताई गयी है। प्राकृतिक वैकारिक और दाक्षिणिक।[2]

भारतीय दर्शनो मे न्याय वैशेषिक अपवर्ग को मोक्ष मानता है। न्याय का कथन है कि अदृष्ट का अभाव हो जाने पर कर्म चक्र की गति का स्थगन

1-तत्वार्थ सूत्र 1/4

2-तत्वसमास 20

अन्त हो जाता है तब आत्मा का शरीर से संबंध विच्छेद हो जाता है, जन्म मृत्यु की परम्परा का भी अवसान हो जाता है तब दुःखों से सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है, यही मोक्ष है।[1] न्याय वैशेषिक में शरीर, मन सहित छः इन्द्रियाँ छः विषय, छः बुद्धियाँ, सुख और दुःख आदि इक्कीस दुःख कहे गए हैं इनसे सदैव के लिए छुटकारा पाना ही मोक्ष बताया गया है।

मीमांसा दर्शन में त्रिविधस्यापि बन्धस्यात्यन्तिको विलयो मोक्षः कहा गया है। तात्पर्य यह है कि त्रिविध सांसारिक बंधनों से सदा के लिए संबंध विच्छेद हो जाना ही मोक्ष है। इस मत के आचार्य प्रभाकर के अनुसार अधर्म का लोप हो जाने पर शरीर का आत्यन्तिक नाश हो जाता है और सांसारिक बन्धनों से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाता है इसे ही मोक्ष कहा जाता है।[3] इस मत के एक और आचार्य कुमारिल के अनुसार समस्त दुःखों से रहित तथा त्रिविध बन्धनों से मुक्त होकर आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना 'मोक्ष' है।[4] मीमांसा दर्शन के अनुसार मुक्तावस्था में आत्मा समस्त प्रकार के सुखों एवं दुःखों से सर्वथा शून्य हो जाता है। उसी मन इन्द्रिय व शरीर का सम्बन्ध सदा के लिए छूट जाता है तथा भविष्य में भी नये शरीर की उत्पत्ति नहीं होती।

वेदान्त दर्शन के अनुसार अखण्ड ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जब अज्ञान और तज्जन्य जगत का नाश हो जाता है तो जगत का अखण्डाकारित चित्त वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। उस समय सजीव ब्रह्म ही शेष रहता है। जीव और ब्रह्म का अभिन्नरूप सिद्ध हो जाता है यही मुक्ति है। वेदान्त दर्शन में

1- वैशेषिक सूत्र 5/2/18
2- शास्त्रदीपिका 125
3- प्रकरण पंजिका 156
4- शास्त्र दीपिका पृ0135

मुक्ति के दो प्रकार माने गये है- जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति । तत्त्वमसि वाक्य के द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाने से जब पर ब्रह्म का साक्षात्कार होता है तो उस समय अज्ञान और उसके कार्य का नाश हो जाने पर संचित संशय, विपर्यय और उसकी आदि कर्म भी नष्ट हो जाते है । तब ब्रह्म वेत्ता जीवित रहते हुए भी समस्त सांसारिक बन्धनो से मुक्त हो जाता है , इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ पुरुष को जीवन्मुक्त कहते है------जीवन्मुक्त पुरुष का जब शरीर शांत हो जाता है तब वह विदेह मुक्त हो जाता है । भाव यह है कि प्रारब्ध कर्मों के भी नष्ट हो जाने पर ब्रह्मवेत्ता का जब शरीर पात हो जाता तब वह विदेह, मुक्त (परममुक्त) हो जाता है । श्रुति मे भी कहा गया है कि जीवन्मुक्त पुरुष जीवित रहते हुए भी दृश्यमान रागद्वेषआदि बन्धनो से उन्मुक्त हो जाता हैऔर इस शरीर के नाश हो जाने पर आत्मा शरीर के बन्धन से भी मुक्त हो जाती है, तब वह "विदेह मुक्त हो जाताहै । विदेह मुक्ति हो जानेपर पुरुष को जन्म मरण का सांसारिक बन्धनों से आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है अर्थात उसे दुबारा शरीर नहीं धारण करना पड़ता है । यही विदेह मुक्ति है ।[1]

वैष्णव वेदान्त व विशिष्टाद्वैत मत के अनुसारजीव और ब्रह्म के ऐक्य ज्ञान होने के पश्चात जीव का अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाना ही मोक्ष है । मुक्तावस्था मे जीव और ब्रह्म की अभिन्नस्थिति हो जाती है । रामानुजाचार्य के अनुसार जीवन्मुक्ति संभव नहीं है केवल विदेह मुक्ति ही होती है । उनके अनुसार वैकुण्ठ मे भगवान का दास बनकर रहना ही परममुक्ति है ।

द्वैतदर्शन के अनुसार परमात्मा का साक्षात्कार ही मोक्ष है यह स्थिति परमात्मा के अनुग्रह से प्राप्त होती है ।

1- भारतीय दर्शन पृ0315-16, डा0 बद्यनाथ द्विवेदी.

भारतीय दार्शनिक मतों में निम्बार्क मत परमात्मा के साक्षात्कार को मोक्ष मानता है। उनके अनुसार प्रभु से मिलने पर समस्त क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति होजाती है और जीव को मोक्ष पद प्राप्त होता है उनके अनुसार जीवन्मुक्ति नहीं होती केवल विदेह मुक्ति ही होती है।

शुद्धाद्वैतवादी आचार्य वल्लभ के अनुसार वैकुण्ठ की प्राप्ति ही मोक्ष है क्योंकि वहाँ ही भगवान के आनन्दमय रस की प्राप्ति होती है।

अन्य भारतीय दर्शनों में शैव दर्शन जीव द्वारा शिव पद की प्राप्ति को मोक्ष मानता है। इस दर्शन के समर्थक मानते हैं कि शिव अपनी माया शक्ति द्वारा जगत की सृष्टि करता है। उनके अनुसार यह जगत अयथार्थ है केवल शिव की यथार्थ सत्ता है। शिव के इस रूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है। वे यह भी मानते हैं कि यह तत्वज्ञान विद्या से प्राप्त होता है और तब जीवात्मा मुक्त हो जाता है।

भारतीय दर्शन और मोक्ष साधन-

भारत के प्रमुख दर्शन तथा उपनिषदों में ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया गया है। वे यह मानते हैं कि ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है और अज्ञान के नाश होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है- "अविद्यास्तमयो मोक्षः" उपनिषद यह मानते हैं कि श्रवण मनन, निदिध्यासन आदि से इसी जन्म में परम पद की प्राप्ति और ब्रह्म साक्षात्कार संभव है।

भारत का प्रमुख दार्शनिक मत चार्वाक जीवन के सुखों के उपभोग के उपरान्त मरण को मोक्ष मानता है अतएव उनके अनुसार मोक्ष का साधन मृत्यु है।

जैन दर्शन मे मिथ्या दर्शन को बन्ध माना गया है तथा बन्ध के कारणों के निराकरण और तथा निर्जरा के माध्यम से कर्मों से मुक्ति को ही मोक्ष का साधन माना है । अहिंसा,सत्य व अस्तेय आदि महाव्रतों द्वारा सम्यक्दर्शन सम्यग ज्ञान व सम्यक चरित्र की प्राप्ति ही मोक्ष के साधन हैं ।

बौद्ध दर्शन निर्वाण के लिए परमार्थ की प्राप्ति को विशेष महत्व देता है । बौद्ध दर्शन यह मानता है कि प्रज्ञा,शील और समाधि से ही भव भय और अविद्या का नाश होता है और निर्वाण की प्राप्ति होती है । तात्पर्य यह है कि सम्यक ज्ञान से ही दुःख दूर हो जाते हैं और तदन्तर ही दुःखों की निवृत्ति या मोक्ष संभव है ।

प्रमुख भारतीय दर्शन सांख्य योग मे अविद्या के विनाश और मोक्ष प्राप्ति के लिए विवेक ज्ञान की अनिवार्यता प्रतिपादित की गयी है । इसके लिए त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक हानि आवश्यक है । यह स्थिति चित्त वृत्तियों के निरोध से संभव है और चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए यम, नियम, आसन प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा ध्यान और समाधि आदि मुख्य साधन हैं ।

भारतीय दर्शनों मे न्याय वैशेषिक के अनुसार तत्व ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है इस मत के प्रमुख आचार्य श्रीधर के अनुसार तत्वज्ञान के लिए श्रद्धा का होना परमावश्यक है । श्रद्धा कुलीन व्यक्ति मे होती है जो कुलीन नहीं है वह श्रद्धा रहित होता है । श्रद्धा होने पर ही जिज्ञासा होती है और जिज्ञासा से ही तत्वज्ञान प्राप्त होता है । वे यह मानते हैं कि श्रवण,मनन निदिध्यासन द्वारा तत्वज्ञान से साक्षात्कार होता है । वे यह भी मानते हैं कि यथार्थ ज्ञान ही साक्षात्कार है । यह मत अष्टांग योग को भी तत्व ज्ञान का साधन मानता है तथा यम,नियम,आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान ,धारणा, समाधि को इस दृष्टि से विशेष महत्व देता है ।

मीमांसा दर्शन के आचार्य कर्म को ही बन्धन का मूल कारण मानते है । यहाँ बन्धन के कार्य और कर्म को कारण माना गया है । काम्य और निषिद्ध कर्म बन्धन रूप है। काम्य कर्मों से पुण्य और निषिद्ध कर्मों से पाप उत्पन्न होता है । ये दोनों ही बन्ध के कारण है इनका नाश होने पर कार्य (बन्ध) का स्वतः नाश हो जायगा । अतः काम्य और निषिद्ध कर्मों का सर्वथा परित्याग करना चाहिए । किन्तु नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों को करते रहना चाहिए जो आत्मा संसार के बन्धनों से छुटकारा पाना चाहता है उसे काम्य निषिद्ध कर्मों का सर्वथा छोड़ देना चाहिए । केवल वेद विहित कर्मों को करना चाहिए । इस प्रकार वेदोक्त कर्मों के आचरण एवं निषिद्ध कर्मों के परित्याग से शरीर का नाश हो जाता है और नये शरीर की उत्पत्ति नहीं होती । उस समय आत्मा मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है ।[1]

भारतीय दर्शनों में से प्रमुख वेदान्त में मोक्ष प्राप्ति के दो साधनों का उल्लेख मिलता है- बहिरंग और अन्तरंग । बहिरंग साधन चार प्रकार का होता है अतः इसे साधनचतुष्टय भी कहते है । वेदान्त के अनुसार 'साधनचतुष्टय' निम्न प्रकार है-

1- नित्यानित्य वस्तु विवेक- नित्य (ब्रह्म) और अनित्य (जगत) के वास्तविकता का ज्ञान । नित्यानित्यवस्तु विवेक है ।

2- वैराग्य- इस लोक और परलोक में प्राप्त होने वाले फलों के भोग के प्रति उपेक्षा बुद्धि रखना 'वैराग्य' है ।

3- शमादिषट्क- शम, दम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा- ये शमादि षट्सम्पत्ति कहे जाते है ।

4- मुमुक्षुत्व- मोक्ष की इच्छा से युक्त होना मुमुक्षुत्व है ।

1- भारतीय दर्शन पृ0[illegible]- डा0 पारसनाथ द्विवेदी.

अन्तरंग साधन-

श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि ये चार अन्तरंग साधन कहे जाते हैं। समस्त वेद वाक्यों का अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में तात्पर्य निश्चय करना 'श्रवण' है जिसका श्रवण किया गया है, उस अद्वितीय वस्तु का वेदान्तानुकूल तर्कों द्वारा चिन्तन करना मनन है। विजातीय शरीर आदि प्रत्ययों से रहित होकर अद्वितीय वस्तु ब्रह्म के सजातीय प्रत्ययों को प्रवाहित करना 'निदिध्यासन' है समाधि दो प्रकार की होती है - सविकल्पक समाधि और निर्विकल्पक समाधि। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के विभाग के विलय की अपेक्षा न करके अद्वैताकार चित्तवृत्ति का अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में [illegible] तद्रूप होकर स्थित हो जाना निर्विकल्पक समाधि है।

निर्विकल्पकसमाधि के अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि। ये ही योगदर्शन में योग के आठ अंग कहे गये हैं। इस अष्टांग निर्विकल्पक समाधि के लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद ये चार विघ्न कहे गये हैं। इन्हें ही विघ्नचतुष्टय के नाम से अभिहित किया जाता है। जब समाधिकाल में चित्त अखण्डवस्तुब्रह्म का अवलम्बन न करने के कारण चित्त का सो जाना (निद्रा) समाधि का लय नामक विघ्न है। अखण्ड वस्तु ब्रह्म का अवलम्बन न करके चित्त वृत्ति का अन्य वस्तु का अवलम्बन करना विक्षेप नामक विघ्न है। लय और विक्षेप का अभाव होने पर रागादि वासनाओं के कारण चित्त वृत्ति के स्तब्ध हो जाने से अखण्ड ब्रह्म का अवलम्बन न करना 'कषाय' नामक विघ्न है। अखण्ड ब्रह्म का अवलम्बन न करने पर भी चित्त वृत्ति का सविकल्पकसमाधि के आनन्द का आस्वादन करना रसास्वाद है। इन चार प्रकार के विघ्नों से वृत्ति चित्त निर्वात स्थान में स्थित दीपक के समान निश्चल है। जब अखण्ड चैतन्यमात्र के रूप में स्थित होता है तो उस समय निर्विकल्पकसमाधि होती है।[1]

1- भारतीयदर्शन पृ0314 डा0 पारसनाथ द्विवेदी.

वेदान्त दर्शन में रामानुज के मतावलम्बियों ने मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये हैं - कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति और प्रपत्ति । विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं कि ~~[illegible]~~ वैदिक कर्मों के अनुष्ठान और चित्त शुद्धि एवं ईश्वर के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है । वे यह भी मानते हैं मोक्ष पद प्रभु के अनुग्रह के बिना संभव नहीं है । द्वैताद्वैत मत भी मोक्ष में प्रभु के अनुग्रह को महत्व और शरणागत भक्ति पर विशेष बल देता है ।

शुद्धाद्वैतवादी आचार्य वल्लभ मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन पुष्टि मार्ग भक्ति है । वे भक्ति के दो भेद करते हैं - मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति उनके अनुसार मर्यादा भक्ति में भक्त को ज्ञान एवं साधन के द्वारा तथा पुष्टि मार्गीय भक्ति में भगवान के अनुग्रह से भक्ति प्राप्त होती है ।

भारतीय दर्शनों में शैव दर्शन मोक्ष का साधन ज्ञान को मानते हैं । वे यह मानते हैं कि ज्ञान द्वारा जीवात्मा कर्म और बन्धन के पाश का अन्त करते हैं तथा जीवात्मा पशुपति का सान्निध्य प्राप्त करके अखण्ड आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर सकता है ।

संक्षेप में भारतीय दर्शन का स्वरूप बड़ा ही व्यापक है तथा यह जीव, ईश्वर, जगत, माया, मोक्ष तथा मोक्ष के साधनों आदि पर बड़े ही वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डालता है ।

आलोच्य आधुनिक प्रतिनिधि महाकाव्य

आधुनिक महाकाव्यों की प्रायः तीन श्रेणियाँ निर्धारित की जा सकती हैं । इनमें से कुछ तो ऐसे महाकाव्य हैं जो पूरी तरह लक्षण बद्ध हैं कुछ आंशिक रूप से लक्षण बद्ध हैं तथा कुछ लक्षणबद्धता से परे हट कर सर्वथा नवीन प्रयोगों पर आधारित हैं । हमें यहाँ प्रिय प्रवास, साकेत,

विरहिणी, श्रीरामचन्द्रोदय, सिद्धार्थ, कामायनी, पार्वती, जयभारत सविता, लोकायतन, जानकी जीवन, कृष्णायन, विदेह, रामराज्य, अरुण रामायण, भगवान राम आदि महाकाव्यों पर विचार करना है । यहाँ उक्त महाकाव्यों का सामान्य परिचय प्रस्तुत है-

1- प्रिय प्रवास-

हरिऔध द्वारा रचित इस महाकाव्य की कथावस्तु भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित है किन्तु कथावस्तु संगठन की दृष्टि से इस कृष्ण कथा में कवि ने स्वतंत्र रूप से कार्य किया है । यह परिवर्तन कथाक्रम में भी है और चरित्रों के प्रभावोत्पादन में भी इस महाकाव्य में हरिऔध का उद्देश्य कृष्ण चरित्र को लोक मंगल की भूमि पर प्रतिष्ठित करना रहा है । इस दृष्टि से कवि ने गोवर्धन धारण व दावानल पान आदि घटनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि वे लोक बुद्धि के लिए ग्राह्य बन गयी हैं ।

साकेत

मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत महाकाव्य में प्राचीन राम कथा को मौलिक रूप दिया गया है, बारह सर्गों में विभक्त यह महाकाव्य राम के राज्याभिषेक की तैयारियों से आरंभ होता है । लक्ष्मण और उर्मिला के मनोविनोद ने इसे बहुत ही रोचक बना दिया है । कथा का पर्यवसान उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन तथा राम राज्य की प्रतिष्ठा के साथ हुआ है । इस कृति में उर्मिला के विरह वर्णन का अपना एक विशेष महत्व है ।

विरहिणी

पं० हरिराम शर्मा कृत विरहिणी महाकाव्य भी कथा निबद्ध महाकाव्य नहीं है । इस उदात्त रचना में जीव की परमात्मा से वियुक्ता है

के रूप में देखा गया तथा बोध की इस विरह की व्यथा कथा को ही मार्मिक ढंग से काव्य रूप प्रदान किया गया है। भाषा, भाव कल्पना व विचार आदि की दृष्टि से यह रचना भी हिन्दी साहित्य की निधि है।

रामचन्द्रोदय

रामनाथ ज्योतिषी कृत यह रचना ब्रजभाषा की एक महत्व पूर्ण उपलब्धि है। यह रचना राम कथा पर आधारित तथा 16 कलाओं में विभक्त है। इसकी इन कलाओं में से आठ में राम जन्म से विवाहोपरान्त अयोध्यागमन तक की कथा तथा शेष आठ में राम सीता को अष्टयाम चर्या, षट्ऋतु वर्णन, वर्णाश्रम व्यवस्था, राजनीति नीति, देव वन्दन आदि विषय वर्णित है।

सिद्धार्थ

अनूप शर्मा कृत यह महाकाव्य अश्वघोष की बुद्ध चरित रचना पर आधारित है। इस कृति का कथानक इतिहास सम्मिलित है और शरीर प्रारम्भ नायक सिद्धार्थ के जीवन पर आधारित है। काव्य प्रसंगों में कोई विशेष मौलिकता नहीं दृष्टिगोचर होती है। इस पर कहीं-कहीं सौन्दरानन्द, मेघदूत व वैराग्य शतक आदि संस्कृत ग्रन्थों की भी छाया दिखाई देती है।

कामायनी

कामायनी महाकाव्य में श्री जयशंकर प्रसाद ने भारतीय वाङ्मय की बिखरी सामग्री का उपयोग किया है और मनु श्रद्धा और इड़ा की विशेष रूप से कथा का आधार बनाया है। चिन्ता से आनंद सर्ग तक का यह महाकाव्य प्रलय के बाद मनु और श्रद्धा की भेंट तथा तमाम

तथा तीसरे सर्ग में उनकी समाप्ति का वर्णन है । यह महाकाव्य 15 सर्गों में विभक्त है तथा इसमें सृष्टि की कथा को कवि ने अभिव्यक्त किया है। पूरे महाकाव्य में कवि ने युग की परिस्थितियों और समस्याओं को समन्वित करके विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

लोकायतन-

सुमित्रानन्दन पंत कृत लोकायतन नवीन उदभावनाओं से पूर्ण महाकाव्य है । यह रचना किसी कथा सूत्र से निबद्ध नहीं है किन्तु इस पर संस्कृत साहित्य और दर्शन का व्यापक प्रभाव है । विचार मात्र, भाषा कल्पनागत औदात्य के साथ साथ गुणों के कारण यह रचना महाकाव्यों की कोटि में परिगणित की जाती है ।

जानकी जीवन

राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' कृत यह महाकाव्य जानकी जी के जीवन को आधार मान कर रचा गया है । कवि ने रामकथा के इस पहलू की मार्मिक स्थल को पूर्ण कवित्व शक्ति के साथ इस काव्य में उपस्थित किया है । आधुनिक युग में रचे गये महाकाव्यों में इसका विशेष महत्व है पूरे काव्य में प्रमुख रूप से संस्कृत वर्ण वृत्तों का ही प्रयोग किया गया है ।

कृष्णायन

पं0 द्वारिका प्रसाद मिश्र कृत कृष्णायन रामचरित मानस की शैली में लिखी गयी कृष्ण कथा है । इसमें सात काण्ड हैं- अवतरण काण्ड, मथुरा काण्ड, द्वारका काण्ड, पूजा काण्ड, गीता काण्ड तथा आरोहण काण्ड । इनमें से कवि ने अवतरण काण्ड में कृष्ण के बाल चरित का वर्णन श्रीमद् भागवत और सूरसागर के आधार पर किया है । मथुरा काण्ड

और द्वारका काण्ड में कृष्ण विवाह आदि का वर्णन है । कृष्णायन के अंतिम चार काण्डों की कथावस्तु महाभारत से प्रभावित है ।

विदेह

विदेह महाकाव्य के रचनाकार पोद्दार श्री रामावतार अरुण हैं । विदेह राज जनक के जीवन को आधार मान कर काव्य रचा गया है जिसके कारण इस काव्य ग्रन्थ का पर्याप्त दार्शनिक महत्व है । यह रचना भाव भाषा और प्राञ्जल अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अपेक्षित उत्कृष्ट और श्रेष्ठ है ।

रामराज्य

डा0 बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'रामराज्य' की कथा का संक्षिप्त मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण से है किन्तु कवि ने इस रचना में रामकथा को नवीनतम परिवेश में देखा है तथा कृति की भूमिका में यह स्पष्ट घोषणा भी की है कि कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं किन्तु राष्ट्रीय व एकीकरण और सुराज्य व्यवस्था से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति अनुसार प्रकाश डालना है ।[1]

अरुण रामायण

पोद्दार रामावतार अरुण द्वारा रचित यह काव्य ग्रन्थ मानस चतुःशती के अवसर पर प्रकाशित हुआ था । इसमें हिन्दी खड़ी बोली में रामचरित मानस की भांति संक्षिप्त रूप से सात सोपानों में रामकथा कही गई है । पूरी रचना कवि की अपूर्व काव्य शक्ति और

1- रामराज्य भूमिका पृ0 9 डा0 बलदेव प्रसाद मिश्र

अभिव्यक्ति को परिचायक है । कवि ने स्थान स्थान पर कथा क्रम को नया मोड़ देकर सुगासुरुचि बनाने का भी अच्छा प्रयास किया है ।

भगवान राम

श्री मन मोहन लाल श्रीवास्तव कृत इस महाकाव्य में भगवान राम के तपोवन विहार का वर्णन किया गया है । यह काव्य ग्रन्थ राम काव्य परम्परा के एक शाश्वत कड़ी है । इस पर पूर्ववर्ती काव्य ग्रन्थ, रामायण व रामचरित मानस का विशेष रूप से प्रभाव है । इस ग्रन्थ संस्कृत वृत्तों का बहुलता से प्रयोग किया गया है ।

तृतीय अध्याय

आलोच्य काव्यों में वीर का स्वरूप

तृतीय अध्याय

आलोच्य काव्यों में जीव का स्वरूप

जीव को प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में ईश्वर का अंश स्वीकार किया गया है। यह अवश्य है कि सूक्ष्म भेदों के आधार पर उसके स्वरूप में अन्तर स्पष्ट करते हुए भिन्न भिन्न दर्शनों में उसकी व्याख्या भिन्न भिन्न है तथापि उसके मूल रूप में प्रायः अन्तर नहीं है।

प्रिय प्रवास-

प्रिय प्रवास में कवि ने स्वीकार किया है कि जीव कर्मानुसार नाना प्रकार के रूप और शरीर के बन्धनों में पड़ता है। मृत्यु के उपरान्त जीव स्थूल शरीर का परित्याग करता है परन्तु लिंग शरीर या सूक्ष्म शरीर उसे फिर भी जकड़े रखता है किन्तु जीव अपनी साधना द्वारा उस बन्धन से छूटता है और आत्म तत्व को पहचानता है। शैव जैन और बौद्ध आदि दर्शनों में भी जीव को कर्म बन्धनों से जकड़ा हुआ बताया गया है। प्रिय प्रवास में भी जीव के बन्धनों तथा कर्म फल पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार-

'भारतीय दार्शनिकों ने जीव को नाना प्रकार के बन्धनों में बद्ध किया। वह संसार में अनेक कष्ट सहन करता हुआ बताया है और इन कष्टों

से बचने के लिए अनेकानेक मार्ग सुझाए हैं । परन्तु सभी एक मत से यह कहते हैं कि पापकर्म करने के कारण जीव बंधन में पड़ता है । और पुण्य कर्मों के कारण इन सब बन्धनों से सर्वथा दूर रह कर परम शान्ति या मोक्ष अथवा मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । हरिऔध ने 'प्रिय प्रवास' में भी जीवों की इसी गति की काव्यात्मक व्याख्या करते हुए पूतना, बक, कालीनाग व्योमासुर, अघासुर, केशी चाणूर, मुष्टिक आदि के कर्मों में ऐसे नारकीय जीवों का वर्णन किया है जो समाज को पीड़ा पहुँचाते हुए नाना प्रकार के पाप कर्म करते रहते हैं और अपने पाप कर्मों के कारण ही दुर्गति को प्राप्त होते हैं और राधा एवं श्रीकृष्ण के लोक पावन चरित्र द्वारा यह दिखाया है कि सुकर्म करने वाले जीव केवल एक स्थान को ही सुख और शान्ति से सम्पन्न नहीं बनाते अपितु सत्कर्मों और शुभ प्रेरणाओं एवं परोपकारादि के द्वारा सम्पूर्ण जगती में में सुख और शान्ति की स्थापना करते हैं । यहाँ राधा और श्रीकृष्ण के लोक-सेवा एवं लोक हित संबंधी पुण्य कर्मों में जीव के समस्त पूर्व कर्मों की जो काव्यात्मक व्याख्या की गयी है वह सर्वथा अनुकरणीय एवं स्पृहणीय है । श्रीकृष्ण का निडर होकर सबसे मिलना, कलह विवाद को शान्त कराने का प्रयत्न करना, वृद्ध व्यक्तियों को शिक्षा देना तथा रोगी दुःखी एवं आपद ग्रस्तों की सेवा करना एक पुण्यात्मा जीव के शुभ कर्मों की ओर संकेत कर रहा है ।'[1]

कवि का कथन इस संदर्भ में उद्धरणीय है-

पर किसी अंकित पुण्य से गरल अमृत अंग को हुआ ।
विषमयी वह होकर आप ही केवल काल भुजंग का हुआ ॥

1- प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन- पृ0 31-12 डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना

ईश्वर रूप कृष्ण के लोकहित कारी कार्य और विश्व मानवता को परम सुख और शांति के प्रेरणा भी कवि ने जीव के कर्मों के सन्दर्भ में ही चित्रित की है ।

राधा द्वारा अपने शुभ कर्मों से सम्पूर्ण क्लेश-जन्य दुर्गुणों को दूर करना, मलिनता और कलुषता को समाप्त करके समस्त प्राणिमात्र के हृदयों में भावुकता का बीज वपन करना आदि प्रसंग भी जीव की स्थिति को ही स्पष्ट करते हैं तथा उसे लक्ष्य प्राप्ति हेतु सद् विचारों का संकेत करते हैं ।

कवि का विचार है कि जीवात्माओं में तब तक ही सौन्दर्य एवं दीप्ति है जब तक उनका सान्निध्य प्रभु से है । प्रभु से विलग होने के बाद जीव धारी क्या चेतन और अचेतन सभी को भी दीप्ति समाप्त हो जाती है । कृष्ण के वियोग में यमुना तट पर यही स्थिति हो गयी है । उद्धव के ब्रज गमन के माध्यम से वर्णित यह चित्र देखिए

बनी हुई एक निगूढ़ खिन्नता
विलोकते थे निज सूक्ष्म दृष्टि से ।
सशंक होने बहु सुप्त रीति से,
रही बढ़ाती उर की विरक्ति को ॥

प्रशस्त शाखा वट वृन्द की उन्हें
प्रतीत होती सब सत्य तुल्य थी ।
सकामना थी नभ ओर ही उठा
विलम्बमाना परमेश के लिए ॥

कलिन्दजा के सुप्रवाह के तटों ।
विहंग क्रीड़ा कल नाद माधुरी ।

उन्हें बनाती न अतीव मुग्ध थी ।
सदामता-सुकला वितान थी ।

सरोवरों की सुषमा अकम्रता ।
सुमेरु और निर्झर आदि रम्यता ।

न थी यथा तथ्य उन्हें दिखावती
अनन्त सौन्दर्यमयी कलावती ।।

कोई कोई विटप पर थे बाज़ी मार जाते ।
शाखाओं द्वारा असामय को देख लेते सुखी जो ।

ऊधो होते भग्न पतित थे किन्तु तत्काल ही वे
शाखाओं को स्वपति का जो ज्ञान दे थे उठाते ।।[1]

इस प्रकार कवि ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक क्षेत्र में निवास जीवात्मा प्रभु के सान्निध्य द्वारा ही प्रकाशित व शोभित रहती है अन्यथा उसकी चमक समाप्त हो जाती है । जीवात्मा का जो सुख है वह प्रभु कृपा से ही है ।

1- प्रिय प्रवास 11/109-112

साकेत-

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की उत्कृष्ट काव्य कृति साकेत विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित है। इस दर्शन के अनुसार जब ब्रह्म सूक्ष्म तत्व से विशिष्ट होता है तब वह ईश्वर कहलाता है तथा जब वह भिन्न तत्व से विशिष्ट होता है तब उसे जीव कहा जाता है। विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है। गोस्वामी तुलसी दास ने भी 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' कह कर विशिष्टाद्वैत की पुष्टि की है। साकेत की उर्मिला भी कहती है-

उठ अपार न पार जाकर भी गयी।
उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नयी।

अटक जीवन के विरोध विचार में,
भटकती फिरती स्वयं मझधार में,
उलझ कर्षण मूल,कुल्य कछार में,
विचरता है किन्तु वायु विहार में।

और चारों ओर चक्कर है कई,
उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नयी॥

पर मिलीन नहीं रहूँ गतिहीन मैं,
दैन्य से न दबूँ कभी, वह दीन मैं।
अति अबला हूँ, किन्तु आत्म-अधीन मैं,
सखि मिलन के पूर्व ही प्रिय लीन मैं॥

कर चला जो कर चुका अपना वही।
उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नयी।[1]

1- साकेत नवम सर्ग - मैथिलीशरण

विशिष्टाद्वैत दर्शन यह मानता है जीव को कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। साकेत के भरत भी कहते हैं कि यह जीव कर्मगत है यह मुक्त होकर भी अति अधीन है-

हा आकर भी मृत्यु कर गया जीव ।
मुक्त होकर भी अधीन अतीव ।।[1]

साकेत के लक्ष्मण भी कहते हैं कि जीव कर्मानुसार ही गति का भोग करता है। पूर्व जन्म के संचित कर्म उसके सुख दुख के बहुत बड़े होकर कारक होते हैं-

माना अर्थ सभी भाग्य का भोग है
किन्तु भाग्य भी पूर्व कर्म का योग ।।[2]

साकेत में गुप्त जी ने मधु मक्खी के माध्यम से भी जीव के कर्म फल की बड़ी ही सटीक व्याख्या की है-

अरी गूंजती मधुमक्खी
किसके लिए क्या तूने यह रस की मटकी रक्खी ?
जिसका संचय देय होगा
काल प्रात में लगा रहेगा
व्याज बस भी नहीं बचेगा ।

1- साकेत द्वादश सर्ग मैथिलीशरण गुप्त
2- वही

लूटेगा पर सबकी
अरी गूँजती मधुमक्खी

इस त्याग कर रंग न छीजी
अपने श्रम का फल है लीजी
नम नम कर कुसुम का कीजी

जहाँ सुधा ही कच्ची
अरी गूँजती मधुमक्खी

प्रोफेसर राम कुमार शर्मा के अनुसार भी जीव विशिष्टाद्वैत वादियों के अनुसार ईश्वर का अंश है। तुलसी ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर अंश जीव अविनाशी साकेत कार भी उपासना का समर्थक है। पूर्व के उदय काल से ही जीव और ईश्वर के लिए उपासक उपास्य माना गया है। साकेत में रामागमन की ये पंक्तियां हैं-

सोचो तुम उपास्य हमारा नित्य का
जब से भव में उदित आदि आदित्य हैं।[1]

कर्म पक्ष को महत्व देने के ही कारण गुप्त जी का विश्वास है कि यह धरती ही स्वर्ग बन सकती है-

संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।[2]

1- गुप्त और साकेत पृ0 202 प्रो0 रामकुमार
2- साकेत अष्टम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

परमात्मा आत्मा विहग,विहग के वृक्ष पर
आसीन किन्तु उभयान्तर है बहु भेद कर ।

परमात्मा दृष्टा,विहग वृक्ष का-स्वाद ले
जीवात्मा भोक्ता कर्म शुभाशुभ-वाद है ।[1]

परमात्मा से बिछुड़ा जीवात्मा के चित्र भी विरहिणी मे बड़े ही कारुणिक बन पड़े हैं । जीवात्मा की विरह विह्वलता की दृष्टि से यहाँ एक पद देखिए-

एकाकी एकाकी
मै हरि एकाकी एकाकी
कौन यहा पर साथी है अब मिटी यहाँ सुख झाँकी ।

मेरी छूटी छुटी पथिका की निर्जन नीरवता की
झलक झलक उठती पल पल मे पाती चेतना की
चिन्तन मे आ जाती स्मृतियाँ कलियाँ आकुलता की ।[2]

विरहिणी जीवात्मा स्नेह के मेघों के लिए व्याकुल है । उसका हृदय विरह से जर्जर और दग्ध हो गया है और उसके सुख की शोभा अगाध हो गयी है मन के मीन के माध्यम से जीवात्मा की दशा का यह चित्र बड़ा ही मार्मिक और कारुणिक है-

---

1- विरहिणी ,आत्म मुक्ति चिन्तन ,076 डा0 [illegible] शर्मा 'जीत'

2- वही पृ0 94

स्नेह के मेघ कहो, कब बरसोगे ?

दैन्य-तृषा चिर-दग्ध उर-अन्तर

विरहातप तापित तन जर्जर

काम मदुका-कर्म-दल विस्तर

अपलक प्राचीन ।

पुलक-पुलक वीरान, तपोवन

लोहित शोभा-विरचित निर्जन

छाया-शून्य विकला-वर्णन

आनन उदास छवि हीन ।[1]

ग्रीष्म मे विरहिणी मे कवि ने मुख्य रूप से जीवात्मा का वर्णन करते समय औपनिषद चिन्तन को ग्रहण किया है तथा जीवात्मा के परमात्मा से वियुक्त अर्थात उसके विरही रूप का उद्घाटन किया है ।

श्रीराम चन्द्रोदय

वेदान्तियों की भाँति इस महाकाव्य के रचनाकार ने भी जीवात्मा को ज्ञान का स्वरूप स्वीकार किया है उसके अनुसार यह परमात्मा की ही भाँति त्रिगुणातीत व मुक्त तथा निर्लिप्त है-

---

1- विरहिणी विरह पृ0 94 'ग्रीष्म'

महाकाव्य कार ने यह माना है कि जीवात्मा कर्म के वशीभूत है। यह वही काटती है जो बोती है उसके पूर्व कृत पुण्य सौख्य का हेतु होते है। यह विश्व कर्म प्रधान है उसकी शुभ सीमा कर्म क्षेत्र मे ही व्याप्त है-

प्राणी जो करते वही भुगते, बोते सो काटते,
पीड़ा दुःख विषाद शोक का है पापाश्रित वृत्ति के
जो है पुण्य प्रसाद पूर्व कृत का वो हेतु है सौख्य का
देखो कर्म प्रधान विश्व, जिसकी सीमा शुभ व्याप्त है।[1]

कवि यह मानता है कि जो जीवात्मा या प्राणी श्रद्धावान, सुज्ञान, धीर, सुखी, गम्भीर योगी, मुनि सुदृढ़ चरित्र वाला, वीर विनयी व परोपकार मे निरत है वही सुख का भोक्ता व दुःखो से मुक्ति प्राप्त करने वाला होता है-

श्रद्धावान, सुज्ञान, धीर सुखी, गम्भीर योगी मुनी,
जो है सुदृढ़ चरित्र, वीर विनयी निर्वाण पाते वही।

प्राणी जो उपकार मे निरत है वे सौख्य को भोगते
नाना क्लेश उठा उठाकर अधीर होते दुःखी नित्य ही।[2]

जीव की जीवन मुक्त स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है जो सत्कर्म युक्त परा प्रवृत्ति रखकर बैठा है दुःखो का उत्कर्ष देखता है तथा इन भोगो मे ही कल्याण को खोजते हुए गम्भीर चिन्ता व्यापृत,

---

1- सिद्धार्थ पृ0 286, अनूप शर्मा

2- वही.

और शोक करता है ।[1] श्वेताश्वतर उपनिषद में भी जीव के भोक्ता स्वरूप का ही स्वीकृत किया गया है किन्तु यहाँ अज और अजा का रूपक है । उपनिषत्कार के अनुसार ईश्वर तथा जीव दो अज हैं तथा प्रकृति अजा है । लोहित शुक्ल तथा कृष्ण वर्णवाली प्रकृति रूप अजा अपनी ही भाँति की अनेक प्रजाओं का निर्माण करती रहती है तथा ईश्वर रूपी अज उसका परित्याग करता रहता है ।[2] यह जीव गुणों का अन्वय करने वाला फल सम्युक्त कर्मों का कर्ता और किये हुए का उपभोक्ता है । या विश्व रूप त्रिगुण सम्पन्न त्रिपथगामी,प्राणाधिप जीव अपने कर्मों से संचरण करता है इसका परिमाण अंगुष्ठ मात्र है तथा रवि तुल्य रूप वाला है । यह संकल्प तथा अहंकार से युक्त है , बुद्धि व आत्म के गुणों से युक्त यह आराग्रमात्र है । यदि केश के अग्रभाग को सौ भागों में विभक्त कर उसके एक अंश के समान जीव के आकार की कल्पना की जाती है यह जीव अनन्त रूप होने में भी समर्थ है वस्तुतः यह न स्त्री है , न पुरुष न नपुंसक ही और न देहानुसार स्थित । मोहजन्य कर्म, संकल्प,स्पर्श व दृष्टि आदि ही उसके अनेक रूप धारण करने के कारण हैं ।[3]

प्रसाद जी ने उपनिषदों की इस जन्म धारणा को अपनी कामायनी में स्वीकार किया है उपनिषद जीव को पशु के रूप में भी देखते हैं ।

बृहदारण्यक उपनिषद में अणु से अणुतर तथा महत से महत्तर ब्रह्म को जन्तु के अन्तःकरण में स्थित बताया गया है-

---

1- मुण्डकोपनिषद 3/1/2

2- श्वेता0उप0 4/5

3- वही 5/7/2

अणोरणीयान महतो महीयानात्मा
गुहायां निहितो स्य जन्तोः ।[1]

प्रसाद की जीव संबंधी धारणा पर शैवागम का भी स्पष्ट प्रभाव है । इस दृष्टि से वे पर्याप्त उदार तथा समन्वय वादी थे । डा0 जगदीश प्रसाद के शब्दों में -

'प्रसाद जी ने जीव संबंधी औपनिषदिक धारणाओं को बहुत कुछ स्वीकार किया है उपनिषदों मे जीव को ज्ञानानुभूति प्रधान, अथवा भाव प्रधान तथा आत्मज्ञानहीन बताया गया है । उसकी सुखात्मकता का भी कथन किया गया है । प्रसाद जी ने इस धारणा को अपने साहित्य मे वाणी दी है यहां एक प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रसाद जी ने जीव संबंधी केवल औपनिषदिक विचार परम्परा स्वीकार की है या उन्होंने उसमें शैवागम की जीव कल्पना का भी सन्निवेश किया । इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह ध्यान रखना होगा कि प्रसाद जी का दृष्टिकोण समन्वयात्मक तथा उदार रहा है उन्होंने आत्मवाद की वैदिक औपनिषदिक परम्परा को मान्यता अवश्य दी है परन्तु उस मान्यता को इतना व्यापक बना दिया है कि वह इतर विचारों को आत्मसात कर सके । शैवागम मे जीव के संबंध मे पाशबद्ध षटकंचुक शक्तिपात प्रत्यभिज्ञान आदि की धारणाएं प्राप्त होती है जिनको प्रसाद जी ने मुक्त हृदय से स्वीकार किया है । यह प्रभाव उत्तर काल की रचनाओं विशेषकर 'कामायनी' तथा किसी सीमा तक इरावती' मे व्यक्त हुआ है । प्रारम्भ उन्होंने उपनिषदों की विचारधारा से किया । प्रारंभ काल की समस्त तथा उत्तर काल की अनेक कृतियों मे उन्होंने औपनिषदिक

1- बृहदारण्यक उप0 1/5/2

धारणा की ही व्याख्या की है। वह कहते हैं कि उन्होंने जीव संबंधी औपनिषदिक विचारों का आधार रूप में ग्रहण करते हुए उसकी कल्पना का विकास शैवागम की परम्परा के अनुसार किया है।[1]

उपनिषदों में जीव की दुःखानुभूति पर विशेष बल है। दुःखानुभूति के कारण ही सांसारिक माया मोह है तथा शोकादि लक्षण भी तदजन्य ही है। काम का मनु व उनकी प्रजा सृष्टि को दुःखपूर्ण का यह शाप इस संदर्भ में उद्धरणीय है-

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे सृष्टि।[2]

श्रद्धा की प्रेरणा मय वाणी भी कुछ इसी प्रकार है-

इनका निपटारा शासन करते
उन पर रखो अपनी क्षमता।
तुम ही इसके निर्णायक हो,
हो नहीं विषमता या समता।[3]

1- प्रसाद साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ0 173-74, डा0 जगदीश प्रसाद
2- कामायनी इड़ा सर्ग प्रसाद
3- वही ईर्ष्या सर्ग.

द्वैत की अनुभूति के कारण ही जीव नाना प्रकार के कष्टों को सहता है कारण कि द्वैत की अनुभूति के कारण ही उसमें स्वार्थ की उत्पत्ति होती है तथा स्वार्थ ही संसार के तमाम अनर्थों और कष्टों का हेतु है। मनु के इस कथन में द्वैतगत शोषित ममत्व परिलक्षित है-

> यह जलन नहीं सह सकता मैं चाहिए मुझे मेरा ममत्व।
>
> इस जीवन का वरदान मुझे दे दो रानी अपना दुलार।
>
> केवल मेरी ही चिन्ता का तव चित्त वहन कर रहे भार।[1]

डा0 कामेश्वर प्रसाद ने भी प्रसाद के जीव सम्बन्धी विचारों पर विभिन्न दर्शनों की व्याख्या करते हुए गंभीर प्रकाश डाला है जैन दर्शन में चेतन द्रव्य को जीव कहा जाता है। उसके अनुसार जीव अनन्त शक्ति ज्ञान एवं दर्शन सम्पन्न है किन्तु उसके अशुभ कर्मों के प्रतिफल स्वरूप उसमें उन गुणों का विकास नहीं हो पाता है। पर जब जीव शुभ कर्मों का सम्पादन करता है, तब उसके उन गुणों पर पड़ा आवरण तिरोहित हो उठता है और वे आविर्भूत होने लगते हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन में अन्तःकरण विच्छिन्न चैतन्य को जीव बतलाया जाता है। विशिष्टाद्वैतवाद की अन्तर्गत जीव ब्रह्म से भिन्न है। वह दुःख भय से पीड़ित है। ब्रह्म कर्ता का कारण एवं जीव का अधिपति है। सांख्य मत में जीव अज्ञान मोह दुःख भय आदि से ग्रसित है। वह तीन प्रकार का है- मुक्तियोग, नित्य संसारी और तमो योग्य, निम्बार्क जीव को ज्ञान स्वरूप एवं ज्ञानाश्रय दोनों मानते हैं उनका कहना है कि जीव को अपने ज्ञान तथा भोग की प्राप्ति के लिए स्वतंत्र न होकर

1- कामायनी प्रसाद

ईश्वर पर आश्रित रहता है । अतः चेतना एवं ज्ञान की दृष्टि से जीव के ईश्वर के समान होने पर भी उसमें एक विशेष व्यावर्तक गुण है - नियामत्व ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य है । यहां तक कि मुक्त होने पर वह भी ईश्वर का आश्रित है । जीव के संबंध में वल्लभाचार्य का विचार है कि सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अपने आनन्द गुण का तिरोधान कर जीव रूप में प्रकट होता है । उन्होंने उन दोनों के बीच अग्नि स्फुलिंग का संबंध माना है । वह ज्ञाता, ज्ञान स्वरूप तथा अणुरूप है । शैव चिद्‌घनानन्द' हेतु जीव को पशु-पद प्रदान करता है । वह न तो उस दयाचार्य के अनुसार देह रूप न नैयायिकों के समान प्रकाश्य न जैनियों के सदृश अव्यापक होने के कारण प्रसाद जी तदनुकूल जीव तथा आत्मा को व्यापक एवं प्रकाशक रूप मानते हैं । प्रतीत होते है जिस प्रकार वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म एवं जीव में अग्नि एवं चिनगारी का संबंध है उसी प्रकार कामायनीकार के विचार से ब्रह्म एवं जीव में समुद्र एवं लहर का का सम्बन्ध है । वह उसे चेतना मानता है । अग्निराशि से निकले अनेक अग्नि स्फुलिंग तथा चेतना समुद्र में उठती अनगिनत लहरों के उदाहरण का तात्पर्य जीव एवं आत्मा की चेतना एवं अनेकता है । कवि के विचार में यद्यपि लहरों की भांति जीव आत्माएं परमात्मा तत्व से निकली हुयी हैं फिर भी उसे उनकी निजी वैयक्तिकता अस्वीकार्य नहीं है ।'[1]

पार्वती

पार्वती महाकाव्य शैवदर्शन पर आधारित है । शैवमत में जीवात्मा को पशु कहा गया है तथा उसे हेतु अणु चिद्‌, नित्य प्रकाश मान

1-कामायनी सौन्दर्य प्रकृति पृ0 205-डा0 धर्मेश्वर प्रसाद

आत्मा का संस्कार प्रकृति को शिव और सुन्दर करता
ज्ञान दीप से शुचि संस्कृति का पुण्यालोक निखारता ।
ज्योति निम्मृत स्पर्श वाणी की रचना, धर्म,सत्य,व्रत है
सरस्वती का स्नेह वरण की पूजा भक्ति का पथ है ।"[1]

इस महाकाव्य में अन्यान्य वस्तुओं और उनके कथा आदि की अन्तर्कथाओं को छोड़ कर कवि ने त्रिविध मार्गों में आबद्ध जीवों का विस्तार से वर्णन किया है तथा बताया है कि जीवात्मा के लिए स्नेह, ज्ञान आत्मा तथा योग परमावश्यक है क्योंकि उनके बिना जीवन शून्य है और शून्य भी ऐसा कि उसमें प्रेत पिशाचों का डेरा पड़ जाता है-

स्नेह ज्ञान के आत्म योग के बिना देह प्रासाद ।
सुन्दर सुदृढ़ शून्य मंदिर है, जीवन का अवसाद ।
प्रेत पिशाचों का बन जाता शून्य भवन आवास,
पलती जीवन की विडम्बना बन कर अगणित त्रास ।।[2]

इस प्रकार कवि ने इस महाकाव्य में जीवात्मा को पशु के रूप में स्वीकार किया है तथा उसके पशुत्व को समाप्त करके उसमें शिवत्व के संचार के लिए त्रिविध मार्गों से मुक्ति का उपाय बताया है ।

कथा भाग- कृत यह महाकाव्य

कैलाशो शरण गुप्त/महाभारत की कथा पर आधारित है जिसके कारण इस महाकाव्य में महाभारत की भांति ही ज्ञान एवं दर्शन

1-पार्वती पृ० 25 भारती नन्दन
2-वही 536

का पर्याप्त विस्तार है । विभिन्न पात्रों के मुख से विभिन्न दार्शनिक उक्तियाँ इस महाकाव्य में देखने को मिलती है किन्तु सामान्यतः जीव की दृष्टि से इस महाकाव्य के श्रेष्ठ पात्र इसे परमात्मा का अंश स्वीकार करते हैं । अर्जुन के मोह के प्रसंग में कवि ने जीवात्मा की अच्छी व्याख्या की है । अर्जुन युद्ध में हिंसा करने को तैयार नहीं है और यदि हिंसा नहीं होगी तो फिर युद्ध कैसे होगा ? अर्जुन युद्ध क्षेत्र के अपने बन्धु बान्धवों और गुरुजनों को देखकर युद्ध विरत हो रहा है । उसके सम्मुख प्रश्न यह है कि युद्ध किसके लिए किया जाय क्यों किया जाय ? ऐसी स्थिति में कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि और उसे युद्धोन्मुख करने का सफल प्रयास करते हैं । इस अवसर पर कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया है वह आत्मा की स्थिति और स्वरूप को भी स्पष्ट करने वाला है । कृष्ण कहते हैं कि आत्मा कभी मरता नहीं है न कोई इसे मार सकता है । आत्मा को मरने योग्य समझने वाला अनजान है । जीव अजर-अमर है । प्राण नित्य है शरीर अनित्य है । अतएव निर्भय होकर युद्ध करना चाहिए । यह संसार मृत्यु या जन्म पर खेद आदि करने योग्य नहीं है । ज्ञानी ऐसा भेद नहीं करते । यहां जो आया है उसे जाना है अर्थात शरीर का धर्म ही मरण है किन्तु आत्मा ईश्वर की ही भांति अनश्वर नित्य एवं चिरंतन है अतएव युद्ध अनिवार्य है

अशोच्यों शोक सोचने पैठ
और भी तू कुछ गहरा पैठ
मरे का जीता का भी खेद
नहीं करते ज्ञानी यह भेद ।

यहाँ आता सो जाता है,
गया सो फिर भी आता है ।

परस्पर जन्म-मरण परिणाम
शोक का फिर उसके क्या काम ?

मारने वाला जो जाने
और जो उसे मरा माने
उभय वे हैं अज्ञानक्लीव
न मरता है न मारता जीव ।

सर्वथा मरने को देह,
अमर है आत्मा निःसंदेह
नित्य है प्राण अनित्य शरीर
युद्ध कर निर्भय होकर वीर ।[1]

कृष्ण के उपदेश के माध्यम से कवि कहता है कि आत्मा का सर्व स्पर्शी है और आत्मा परमात्मा में कोई विभेद नहीं है । आत्मा कर्म करके भी कर्मों से निर्लिप्त है -

दूर रह मुझसे कभी नहीं
निकट मैं उससे कभी नहीं
योग युक्तात्मा का स्पर्शी
सभी में है आत्म-स्पर्शी

नहीं उसमें मुझमें विभेद
कर्म करके भी वह निर्लेप ।[2]

1- जयभारत पृ0 363-64 मैथिलीशरण गुप्त
2- वही 368

से कहा है कि अनेक अग्नि परीक्षाओं और यातनाओं के बावजूद जीवात्मा ने अन्तश्चेतना का विकास नहीं नहीं किया । जीवात्मा स्वयं को वियोगिनी मान कर दुःख भोगती रही किन्तु यह जीवात्मा वियोगिनी न होकर चिर संयोगिनी है-

शत अग्नि परीक्षाएं है वन निर्वासन,
अपहरण शोक अपवाद, मृत्यु भय दारुण
तुम जीवन करती रही पंक मे पावन
विकसित न अभी तक भू का अन्तश्चेतन ।

वंशी ध्वनि सुन तुम हो उठती थी विस्मृत,
वन हरिणी सी स्वर मोहित तन्मय मूर्छित
अब प्रकृति पुरुष की लीला मय संयोजित
भव की जागृति मे करती युग भू- निर्मित ।

तुम चिर वियोगिनी नहीं, नित्य संयोगिनी,
शाश्वत अंतः रस की अनन्य संयोगिनि ।
विरहानल मे तप होता प्रेम न शोभित ,
वह स्वर्ण मिलन की तन्मयता मे पोषित ।[1]

कवि ने सीता रूपी से जीवात्मा की मुक्ति का आह्वान करते हुए कहा है कि ऐ जीवात्मा तुम तृष्णा दुर्गंध के बंधन से मुक्त होकर आनन्द की उर्मियों का संस्पर्श प्राप्त करो । ताकि तुम्हारे प्राणों के आभा का

1- लोकायतन पृ0 222 सुमित्रानन्दन पंत

मनवाणी से जो परे परात्पर अविदित
वह क्रम धारा जीवन में होने मूर्तित।
जीवन इंद्रिय से ही वह सुलभ न कदाय,
जो अगाध मनस गोचर, अव्यक्त अनामय।[1]

कवि यह मानता है कि जीवात्मा को अन्तश्चेतना का दर्पण बनाकर ही उसमें परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। कवि कहता है कि जीवात्मा को बौद्धिकता में नहीं फँसना चाहिए क्योंकि बौद्धिकता जन्य समस्त वाग्ज्ञान आंशिक है-

तुम मन को करना अन्तश्चेतन दर्पण,
बिम्बित हो जिसमें नव ईश्वर का आनन।
जागो जागो जन मनश्चेतने जागो
देखो तुम अन्तर्मुख, यह विधि श्मत भागो।

तुम बौद्धिकता के सूक्ष्म तमस में फँसकर
मत गिरो छलके व्यस्त गर्त में दुस्तर,
वह बहिर्मुखी चिंतन, सत्य आंशिक भर,
सम्पूर्ण सत्य का स्वर्ग गुहा अन्धकार।[2]

कवि यह मानता है कि जीवात्मा के मन में स्वयं आनन्द का सूर्य ही प्रकाशमान है जो मंगल मय, शाश्वत, व्यापी और आत्मस्थित है। वह अनुपम अनंत, शोभा युक्त, एक और अखंडित है क्योंकि आत्मा स्वयं आनन्द

1- लोकायतन-पृ0 226-27 श्री सुमित्रानन्दन पंत
2- वही 224

जानकी जीवन

पं0 राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा ने जीवात्मा को सर्वात्मा का अंश माना है। उनके विचार से संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सर्वात्मा के ही रूप हैं। कवि ने आत्म रूप प्राणियों के लिए धर्म, अहिंसा व त्याग भावना आदि का भी इस ग्रंथ में उल्लेख किया है-

सर्वात्मा के रूप सर्व प्राणी यहाँ
धर्मात्मा हो शान्त जीवन जीता रहा।
त्यागी हिंसा वृत्ति हो अहिंसा व्रती,
सेवी हिंसा एक सच्चिदानन्द की।[1]

कवि का विचार है कि परमात्मा ही समस्त प्राणियों में परिव्याप्त है। वह बिन्दु रूप होकर पहले पिण्ड में फिर पिण्ड से ब्रह्माण्ड में रमा है। इस सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वात्मा का ही भाव है। इस प्रकार समस्त जीवात्माएँ परमात्मा का ही उज्ज्वल और भासमान स्वरूप हैं-

सत्ताएँ एक तत्व भी एक है
आत्माएँ भी एक एक ही इन्द्रियाँ।
सर्वात्मा में वास भाव संसार का
द्रष्टा हो जो दिव्य दृष्टि से देखता।[2]

× ×

1- जानकी जीवन पृ0 412 राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा

2- वही.

सर्व व्यापी पूर्ण चेतना एक है
आत्मा का व्यापक कहीं की कल्पना ।
पैठा है चैतन्य बिन्दु है पिण्ड में
पिण्डों है ब्रह्माण्ड व्योम में भी रमा ।[1]

मानव की एक जीवात्मा है और उसके लिए कवि ने सांसारिक वासनाओं पर विजय प्राप्ति का संदेश दिया है । कवि का विचार है कि जीवन समर में कायर जीवात्माएं भाग खड़ी होती हैं-

इसीलिए मानव का स्वधर्म है
निवृत्त होना अति निन्दनीय है ।
स्वकीय कर्तव्य निमित्त नित्य ही
लिए हथेली पर प्राण भी रहे ।

× × ×

अवश्य ही जीवन एक जंग है
निवृत्ति होगी उससे नहीं कहीं ।
प्रवृत्त होते नर शूर सिंह से
श्रृगाल से कायर दूर भागते ।[2]

इसी कारण से कवि ने कर्म के परिणाम को प्राणी के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना है-

कर्म निर्भर है गुणों की ग्रन्थि पे
जानो जग की गुणों देती गुणी ।
जो गुणागुण को गुणों में देखता,
कर्म बन्धन मुक्त दृष्टा वह है ।[3]

1- जानकी जीवन पृ0 413 राष्ट्रीय आत्मा
2- वही 44
3- वही 184

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने जीवात्मा को ईश्वर का अंश स्वीकार किया है तथा जीवात्माओं के लिए कर्म निष्ठता का संदेश दिया है ।

कृष्णायन

जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है किन्तु वह संसार में आकर ऐसे माया जाल में फंस गया है कि वह परमतत्व को भूल गया है । उसकी ऐसी विलक्षण स्थिति है कि वह यह तक नहीं समझ पाता कि देह असत है । देह के माध्यम से स्वादों का उपभोक्ता कोई अन्य ही है । कृष्णायन में कवि ने अर्जुन के माध्यम से ऐसे ही मोहाच्छन्न जीव का बहुत अच्छा वर्णन किया है जो कुरुक्षेत्र भूमि में पहुँचने के बाद मोह पीड़ित हो गया है । अर्जुन के ये वाक्य इस संदर्भ में उल्लेख्य हैं-

सखहि रोकहु हरि व्याकुल धीरा
सिथिल गात सूखत मुख मोरा
तनु कम्पन रोमांच सरीरा
खसत हाथ ते धनु गाण्डीवा
मानहु भ्रमत,दाह अंग गाढा ।
रहि नहिं सकत नाथ मैं ठाढ़ा ।

होहि निमित्त विपरीत सब केशव अपर लखाहिं ।
कुशल नाहि हति निज स्वजन, विजय मोद कछु नाहि ॥

मोहि न कृष्ण विजय आकांक्षा ।
राज्य सुखहु हित मोहि न वांछा ।
गोविन्द राज्य लाभ कछु नाहीं
काह भोग जीवनहु माहीं ।

जिन हित तात भोग सुख राजू ।
इच्छत हम सोइ स्वजन समाजू ।।
प्राण-सम्पदा-आस बिहायो ।
समर-मही अवस्थित आयो ।।

कृष्ण द्वारा अर्जुन के ज्ञान हित के माध्यम से भी कवि ने जीवात्मा के स्वरूप पर व्यापक प्रकाश डाला है। गीता पर आधारित इस आशय के व्याख्यानों में बताया गया है कि जीव को कोई मार नहीं सकता। यह न जन्मता है न मरता है। यह नित्य अजन्मा, चिर प्राचीन देह बन्धन से मुक्त तथा नाश विहीन है। यह अव्यय तथा अविनाशी है। इसका न शस्त्रों द्वारा छेदन हो सकता है न इसे अनल जला सकता है जल इसे भिगो नहीं सकता तथा इसे सुखा नहीं सकता1-

जन्मत मरत न यह कब माहीं ।
होइ यह होनहार पु नाहीं ।
नित्य,अजन्मा,चिर प्राचीना
बधेहु देह यह नाश विहीना ।

अव्यय,अविनाशी,अजहु नित्य या जानत याहि ।
सो हो केहि कर वध करत वधवावत हौ काहि ?
धारत वसन नवीन जिमि जीरन मनुज उतारि ।
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु लेत अन्य नव धारि।।

1-कृष्णायन पृ0 303 द्वारिका प्रसाद मिश्र

छेदत शस्त्र न जरत पावक
भिजवत वारि न वात सुखावत ।
छिन्न, दग्ध, भीग नहिं सूखत
थिर पुराण नित अचल सर्वगत ।
अविकारी नहिं कटत हानि जन
जात न नहिं इन्द्रिन्ह ग्रहण ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र जी आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं तथा यह स्वीकार करते हैं कि देह में निवास करते हुए भी यह देह से भिन्न तथा अजर अमर है ।

विशेष

पोद्दार रामावतार अरुण ने इस काव्य में आत्मा को सर्वान्तर में व्याप्त तथा प्राणों को प्राण क्रिया के लिए प्रेरित करने वाला बताया है । कवि ने स्पष्ट किया है कि आत्मा को न देखा जा सकता है न सुना जा सकता है । चाक्रायण और याज्ञवल्क्य के बीच वार्ता के द्वारा कवि ने इस तथ्य को बहुत ही अच्छे ढंग से स्पष्ट किया है-

तब चाक्रायण ने सभा-भूमि में ज्योति लिए
अपरोक्ष ब्रह्म-साक्षात और सर्वान्तर आत्मा से तुलनात्मक
व्याख्या मैं प्रति की है मिथ याज्ञवल्क्य ।
यह तेरी आत्मा ही सर्वान्तर है तथ्यत ।।
सर्वान्तर है वह कौन आर्य ?
यह तेरी आत्मा सर्वान्तर

1-कृष्णायन पृ0 304-305 द्वारिकाप्रसाद मिश्र

जो प्राणों से चलती है प्राण क्रिया प्रतिपल
करता अपान से सदा अपान क्रिया-
करता है व्यान उदान क्रियाएं जीवन में हो व्यान उदानों से
वह सर्वान्तर आत्मा तेरी सर्वान्तर है ।
पर देखा नहीं सकते दृष्टि द्रष्टा को तुम
श्रुति श्रोता को तुम सुन भी कभी नहीं सकते
मति से मन्ता का मनन नहीं कर सकते हो
विज्ञाति पूर्ण विज्ञाता क्या है तुम्हें ज्ञात ?
आत्मा ही तो सर्वान्तर है उससे न भिन्न है आर्त यहां ।[1]

विदेह के माध्यम से कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि सिन्धु में बिन्दु तथा बिन्दु में सिन्धु विद्यमान है अर्थात आत्मा में परमात्मा है और परमात्मा में आत्मा का वास है । सम्पूर्ण सृष्टि इस आत्म व्यापार से ही संचालन प्राप्त होती है ।

कवि यह भी विश्वास है कि आत्मज्ञान की शक्ति द्वारा ही सृष्टि का रूप साकार होता है । कवि का विचार है कि आत्मा की संसार में ही मानवता का संगीत विद्यमान रहता है । कवि का संकेत है आत्मोन्नति द्वारा ही मानवता का हित साधन एवं कल्याण हो सकता है-

सिन्धु को बिन्दु बिन्दु को सिन्धु
बनाने वाले हो तुम कौन
स्वर्ण बन कर मिट्टी की ज्योति
दिखाने वाले हो तुम कौन ।

1- विदेह पृ0 46-47 पोद्दार रामावतार अरुण

मनुज के आत्म ज्ञान की शक्ति
सृष्टि का सत्य स्वयं साकार
यही है मानवता- संगीत
आत्म से उठती जो झंकार ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि भी उक्त जीवात्मा को परमात्मा का अंश मानते है तथा आत्मोन्नति द्वारा विश्व का कल्याण और मानवता का सम्यक विकास स्वीकार करते हैं ।

रामराज्य-

रामराज्य के कवि ने जीव को परमात्मा के अधीन बताया है । राम के मुख से कवि ने कहलाया है कि जीव का प्रतिपालक परमात्मा है जिससे विदित है कि जीव ईश्वर के अधीन है तथा उसके द्वारा ही परिपोषित है-

महाशक्ति है स्नेह, जगत का संचालक यह
धर्म-प्रेरक, जीव जीव का प्रतिपालक यह ।

किन्तु सत्य के बिना, स्नेह निश्चय अन्धा है
भगवती का एक विभ्रम भ्रामक धन्धा है ।।[2]

कवि ने आत्मा और परमात्मा के बीच अटूट संबंध माना है-

1- विदेह पृ0 17 पोद्दार रामावतार अरुण

2- रामराज्य पृ029 बलदेव प्रसाद मिश्र

प्रकृति के और पुरुष के बीच
वहाँ ही बहती है रस धार
जहाँ उसकी उठती झनकार
वहाँ यदि छिड़ा गया सितार ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वारिका प्रसाद मिश्र आत्मा और परमात्मा का चिरंतन संबंध मानते हैं तथा उसे परमात्मा के अंश के रूप में स्वीकार करते हैं ।

अरुण रामायण

अरुण रामायण में प्रायः दो प्रकार के जीवों का वर्णन है । पहले प्रकार के जीव ऐसे हैं जो शुभ कार्यों में व्यस्त हैं दूसरे प्रकार के जीव कुकर्मों में फंसे हुए हैं । भरत हनुमान आदि श्रेष्ठ जीव हैं तथा रावण मेघनाद बालि आदि दूसरे प्रकार के जीव हैं । कवि ने भरत आदि के जीवन का उल्लेख करके स्पष्ट किया है कि उनका जीवन ईश्वर के लिए ही समर्पित है जिससे यह भाव प्राप्त होता है कि जीवात्मा ईश्वर का ही अंश है और उसका लक्ष्य भी ईश्वर में ही विलीन होना है । कवि ने भक्ति के परिप्रेक्ष्य में जीवात्मा के प्रतीक भरत के माध्यम से यह विचार अच्छे ढंग से व्यक्त किये हैं-

यदि तुममें सच्ची भक्ति उन्हें आना होगा
शीघ्र ही तुम्हें उनके समीप जाना होगा ।[2]

1- रामराज्य पृ0 47 द्वारिका प्रसाद मिश्र

2- अरुण रामायण पृ0 252 पोद्दार रामावतार अरुण

अन्यान्य प्रसंगों में कवि ने ईश्वर सृष्टि या जीवात्मा आदि पर विभिन्न पात्रों के माध्यम से चर्चा कराकर जीवात्मा के स्वरूप को अविनश्वर स्वीकार किया है। कवि ने बताया है कि आत्मा ही शरीर में आलोक भरती है किन्तु वह स्वयं जन्म और मरण के चक्र से ऊपर है। बालि की पत्नी को समझाते हुए राम आत्मा की अनश्वरता तथा शरीर की नश्वरता इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

> बोले सीतापति- हे शोक मत करो देवि।
> अपने मन में आलोकित आस्था भरो देवि।।
> अविनश्वर आत्मा के अधीन है जन्म-मरण
> किसके प्राणों पर पड़ा नहीं है काल-चरण ?
> मुरझा जाती है ऋतु, अन्त से सुन्दरता
> मिट जाती है ऐश्वर्य शालिनी नश्वरता।।

भगवान राम

इस महाकाव्य में भी परमात्मा को अंशी तथा जीवात्मा को अंश रूप में स्वीकार किया गया है। कवि ने स्पष्ट किया है कि जीव ईश्वर की कृपा से ही शांति प्राप्त कर सकता है। ईश्वर की कृपा के बिना जीव का जीवन अशान्त तथा कंटकाकीर्ण रहता है। वह अनिश्चित माया जाल में फँसा हुआ सांसारिकता में उलझ जाता है। ईश्वर की कृपा से उसको शांति प्राप्त होती है-

> प्रभो तुम्हारे चरित गान से ही मानव को शान्ति।
> चिर वियोग की पीड़ा से भी मिटा अवश्य भ्रान्ति।।

1- अरुण रामायण पृ0 414 डॉ0 रामावतार अरुण
2- भगवान राम पृ0 300 श्री मनबोधनलाल

भरत, हनुमान व सुग्रीव आदि के चरित्रों के माध्यम से भी कवि ने स्पष्ट किया है कि सत्जीवों पर प्रभु की कृपा होती है तथा वे इस जीवन में ही आत्मिक आनंद प्राप्त करते हैं दूसरी ओर अधम जीव हैं जो संसार के समस्त सुखों का भोग करने के बाद भी आनंद से वंचित रह जाते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आलोच्य प्रायः सभी ग्रन्थों में जीवात्मा को ईश्वर का अंश माना गया है तथा संसार के विभिन्न क्रिया व्यापारों के सम्पन्नता में जीवात्मा के महत्व को स्वीकारा गया है । प्रायः सभी कवियों का विचार है कि सांसारिकता से ग्रस्त होकर जीवात्माएं दो प्रकार से आचरण करती हैं प्रथम सुकृत्य परक, दूसरे कुकृत्य परक । सुकृत्य परक आत्माएं अपना विकास करके कैवल्य के निकट पहुंचती हैं जबकि कुकृत्यों में फंसी जीवात्माएं नाना विधि सांसारिकता के व्यामोह में जकड़ने के बाद जीवन मरण के चक्र में फंसी रह जाती हैं ।

चतुर्थ अध्याय

आलोच्य काव्यों में ईश्वर का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

आलोच्य काव्यों में ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर को ब्रह्म, भगवान, ब्रह्म पर ब्रह्म या शिव आदि रूपों में वर्णित किया गया है। यद्यपि इन सभी शब्दों में पर्याप्त अन्तर है किन्तु सामान्यतः इन सभी को ब्रह्म या ईश्वर का पर्यायवाची शब्द मानकर ही इनका प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत महाकाव्यों में भी ईश्वर के स्वरूप पर विचार करते हुए व्यापक दृष्टिकोण रखा गया है तथा ईश्वर के निराकरण साकार या इन दोनों से निर्दिष्ट आदि सभी रूपों का विवेचन किया गया है। ईश्वर के इस स्वरूप वर्णन में दर्शनगत आधारों की दृष्टि से भी पर्याप्त अंतर आ जाता है किन्तु अनीदृश अलौकिक अतीन्द्रिय परमात्मा को विचारों की सीमा किसी विशेष रूप में या विशेष दर्शन या धर्म के अनुसार ही मानना सर्वथा निरर्थक है। वस्तुतः उसके विषय में जितना कहा जा चुका है वह उतना तो है ही उससे भिन्न जितना है उतना भी है।

प्रिय प्रवास

इस महाकाव्य में कवि ने सर्व व्यापक ब्रह्म को कृष्ण के साकार रूप में देखा है। भारतीय दर्शन सर्वत्र ब्रह्म ही को देखता है और हरिऔध जी

भी इसी विचारधारा से प्रभावित है । डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार "जो कुछ भिन्न भिन्न रूप दिखाई देते हैं वे सब उसी ब्रह्म के परिवर्तन रूप है । उस ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । सर्वत्र वह ब्रह्म ही ब्रह्म है । ये दार्शनिक विचार भारतीय जीवन में अत्यधिक व्याप्त है । जिसमें अद्वैतवाद अथवा अभेदवाद की जिस दार्शनिक परम्परा की ओर इंगित किया गया है, हरिऔध जी भी उससे अत्यधिक प्रभावित थे । इसी कारण आपने लिखा भी था :- "ईश्वर एक देशीय नहीं है, वह सर्व व्यापक है और अपरिच्छिन्न है उसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान है प्राणि-मात्र में उसका निवास है सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।" उनकी धारणा प्रियप्रवास' में भी विद्यमान है । यहाँ पर भी अपने ब्रह्म या आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए उसे अनंत शीश और अगणित लोचनों वाला तथा असंख्य हाथ पैर वाला कहा है । साथ ही बिना मुख के खाता हुआ, बिना त्वचा के स्पर्श करता हुआ, बिना कानों के सुनता हुआ, बिना आँखों के देखता हुआ और बिना नासिका के सूंघता हुआ लिखा है परन्तु वह यह सब कार्य कैसे करता है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कवि ने लिखा है कि सम्पूर्ण जगत में जो असंख्य प्राणी दिखाई देते हैं वे सब उसी ब्रह्म की मूर्तियाँ हैं । और असंख्य कानों, हाथों, आदि के रूप में असंख्य अवयव भी हैं । इस तरह वह ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त होकर नाना प्रकार के कार्य करता रहता है । उसका प्रकाश तारागण, सूर्य, अग्नि, बिजली, नानारत्न, विविध मणियों आदि में दिखाई देता है और उसी की मधुरता पृथ्वी पानी पवन, नभ, पुष्प, राग आदि में दिखाई देती है । इस इन सभी बातों के आधार पर यह स्पष्ट पता चलता है कि वह ब्रह्म विश्व रूप है । वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है और सारा विश्व उसमें समाया हुआ है ।[1]

1- प्रिय प्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० 310 डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना।

ये बातें हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्वरूपी ।
व्यापी है विश्व प्रियतम में विश्व में प्राणप्यारा ।[1]

इस प्रकार कवि ने विश्वात्मा परमात्मा या ब्रह्म में सर्वत्र को तथा सर्वत्र में ब्रह्म की व्याप्ति दिखाया है तथा भिन्नता में अभिन्नता या भेद में अभेद के अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिस्थापना की है। कवि द्वारा वर्णित ब्रह्म का यह रूप आत्मवत् सर्वभूतेषु के भारतीय दर्शन के सनातन सिद्धान्त पर आधारित है। इस प्रकार हरिऔध जी अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हैं। यद्यपि उनके कृष्ण सामान्य मानव के रूप में चित्रित हैं तथापि उनके चरित्र दिव्य गुणों की झलक निरंतर स्पष्ट होती रहती है-

मधुप यों ही न मिलिन्द वृन्द को।
विमोहता और रहता मधुप्र है
वरंच प्यारा उसका सुगंध ही
उसे बनाता बहु प्रीति पात्र है ।।

विचित्र ऐसे गुण हैं ब्रजेन्द्र के
स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है।
निमग्न सी है जिससे नितांत ही
ब्रजानुरागीजन की विमुग्धता ।।

स्वरूप होता जितना न भव्य है
गवाक्ष होते जितने मनोज्ञ हैं।
मिली उसे भी ब्रजप्रीति सर्वदा
मधुर प्यारे गुण के प्रभाव से ।।

1- प्रिय प्रवास 11/81 10

अपूर्व वेशा घनश्याम का है
तथैव वाणी उसकी रसाल है ।
विनीत वे हैं गुण के निकेत हैं
विशेष होगी उनमें न प्रीति क्यों ।।

शरीर है दिव्य सुगंध से भरा
भू लोक में सौरभवान स्वर्ग है ।
स्व-पुष्प से शोभित पारिजात है
मयंक है श्याम बिना कलंक है ।।[1]

यमुना के तट आदि का वर्णन करते हुए भी कवि ने कृष्ण कथा में समाविष्ट कृष्ण के दिव्य कार्यों का अंकन किया है तथा उनके लोक मंगलकारी स्वरूप को उजागर किया है-

कलिन्दजा की कमनीय धार को
बना दिया है जलकेलि-गामिनी ।
उसे बनाता पहले विषाक्त था
विनाशकारी विष-कालिनाग का ।।[2]

हुआ वहाँ का पथ भी सशंक
मनुष्य होते प्रति-वर्ष नष्ट थे ।
कु मृत्यु पाते वह ठौर नित्य ही
अनेकशः गो, मृग कीट कोटिशः ।।[3]

1- प्रियप्रवास 11/11
2- वही 11/16

जिस कालीनाग के प्रभाव से यमुना का जल विषाक्त था उसके नाथने की कथा। वर्णन करने के पीछे कवि का उद्देश्य प्रभु की मानवों पर कृपा तथा उनके लोक रक्षक रूप की स्थापना करना ही रहा है

कई फणों का अतिही भयावना ।
महाविशाकार अशेष देह था ।
वहां वही एक फणीश और थे
कलिन्दजा के कूल किया पड़ा ।

विभीषणाकार प्रचण्ड पन्नगी
कई बड़े पन्नग, नाग साथ थी ।
विकार से वह विषाक्त, कुण्ड का
बनता है जो कहते शनै शनै ॥

फणीश शीर्षोपरि राजती रही
सुमूर्ति शोभामय श्री मुकुन्द की ।
विकीर्णकारी कल-ज्योति-पुञ्ज जो
अतीव उत्फुल्ल सुचारु कुन्द था ॥

विचित्र थी शीश किरीट की प्रभा
कसी हुई थी कटि में सुकाछिनी
दुकूल से शोभित कान्त काय था
विलम्बिता थी बनमाल कण्ठ में ॥

फणीश को नाथ विचित्र रीति से
स्वहस्त में थे वर-रज्जु को लिए ।
बजा रहे थे मुरली मुहुर्मुहुः
प्रवीणता-पुष्पकरी विनोदिनी ॥

गुप्त जी सगुण ब्रह्म के उपासक हैं उनके राम भक्तों के रक्षक तथा लीलाधाम हैं। वे दुष्टों का दमन करने वाले और सन्तों पर कृपा करने वाले हैं -

होगया निर्गुण सगुण साकार है
ले लिया अखिलेश ने अवतार है
किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया ?
मनुज बनकर मानवी का पय पिया ?

भक्तवत्सलता इसी का नाम है
और वह लोकेश लीला धाम है
पथ दिखाने के लिए संसार को,
दूर करने के लिए भूभार को।

सफल करने के लिए जन-दृष्टियाँ,
क्यों न करता वह स्वयं निज सृष्टियाँ
असुर शासन शिशिर मय हेमन्त है
पर निकट ही राम राज्य वसन्त है।

पापियों का जान लो अब अन्त है।
भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है।।[1]

कवि का विचार है कि निर्गुण ब्रह्म ने ही लीला के लिए सगुण रूप धारण किया है। गुप्त जी यह मानते हैं कि राक्षसत्व के विनाश के लिए ही अनादि अनन्त ब्रह्म ने राम के रूप में स्वयं को प्रकट किया है तुलसी ने लिखा है 'भये प्रकट कृपाला' उस प्रकार गुप्त जी के ईश्वर राम दुखियों

1- साकेत प्रथम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

वे कष्ट हरने के लिए प्रकट हुए है-

गुप्त जी के राम शील शक्ति और सौन्दर्य की खान है । वे अद्वितीय और दयामय है । उनके नाम के उच्चारण से ही भवसागर तरने का साधन प्राप्त हो जाता है-

जो नाम मात्रही स्मरण मदीय करेंगे
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे ।
पर जो मेरा गुण कर्म, स्वभाव धरेंगे,
वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे ।।[1]

गुप्त जी के राम स्वयं भी इस धरा पर आने वाले उद्देश्य प्रकट करते है उससे उनके स्वरूप पर व्यापक प्रकाश पड़ता है-

सुख शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया
विश्वासी का विश्वास बचाने आया ।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित है
जो विवश, विकल बलहीन, दीन शापित है
हो जाय अभय वे जिन्हें कि भय भासित है,
जो कौणप कुल से मूक सदृश शासित है ।[2]

मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया
मैं यहाँ एक अवलम्ब छोड़ने आया,

---

1 साकेत अष्टम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

2 वही

गढ़ने आया हूँ नहीं तोड़ने आया
मैं यहाँ जोड़ने नहीं बाँटने आया,
जगदुप का हे झंखाड़ छाँटने आया,
मैं राज्य भोगने नहीं भुगाने आया,
हंसों को मुक्ता मुक्ति चुगाने आया,
भव मैं नव वैभव व्याप्त कराने आया
नर को ईश्वर का प्राप्य कराने आया ।[1]

साकेत में ईश्वर संबंधी धारणाओं के संबंध में प्रो० राजकुमार का विचार है कि विशिष्टाद्वैत वादियों की ही भाँति साकेत में ईश्वर या ब्रह्म को सर्वेश्वर सर्वात्मा सभी कार्यों का आधार और परिणाम प्रदाता माना गया है । साकेत में राम लीलेश लीलाधाम है-

उनको ही लेकर अखिल विश्व की क्रीड़ा ।
आनंद मयी नित नई प्रसव की पीड़ा ।।

विशिष्टाद्वैतवादियों का ब्रह्म अनेक गुणों की खान तथा जीव और जगत दोनों के अन्दर व्याप्त माना जाता है । साकेत के राम इसके उदाहरण हैं । साकेत में राम को सगुण लीलाधारी ब्रह्म माना गया है उन्हें माया मय कहा गया है । श्रीमती सीता ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति है और ब्रह्म रूप राम के समान ही शक्ति शालिनी है । वे राम के हृदय में ठीक वैसे ही है जैसे घनश्याम के भीतर विद्युत की द्युति । सीता जगत माता भी है विभीषण ने रावण से कहा है-

---

[1] साकेत अष्टम सर्ग मैथलीशरण गुप्त

पर नारी, फिर वही और वह
रूपामूर्ति सीता की सृष्टि ।
जिसे मानता हूँ मैं माता,
आप उसी पर क्यों कुदृष्टि ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तजी के साकेत में ईश्वर ब्रह्म का ही रूप है। उनका ईश्वर राम रूप में परम तेज ओज और सौन्दर्य का पुंज है ।

विरहिणी

विरहिणी काव्य में वर्णित ईश्वर का स्वरूप उपनिषदों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप से मिलता जुलता है । विरहिणी का ईश्वर परम अगति, गतिशील निकट दूर , एकरूप, स्वनिष्क परिणामी, प्रेमी, निर्मम, वेगवान, धामवान तथा स्थिरतम होने से परस्पर विरोधी बहु रूपों का कारण रूप है । वह क्षर है, अक्षर है, अति भ्रान्त है और अति शान्त है-

वह क्षर-अक्षर-अतिभ्रान्ति शान्त, एकान्त है,
वह अतल,रमल,हल- सिंह अतीत नितान्त है ।
वह अकाम-काम-कामवसु से कान्त केलान्त है
वह समागम अगम्य-अम से अशान्त है ।

वह परम अगति गतिशील,निकटतम दूर तम,
वह स्वनिष्क परिणामी प्रेमी निर्मम ।
वह वेगवान वह धामवान, वह स्थिरतम,
वह एक उसी से पै अनेक बहुरंगम ।।[2]

1- गुप्त और साकेत पृ0 101-202 राजकुमार
2- विरहिणी परम पुरुष पृ0 13 आ0 ओम

धारिहु पदारथ को पुत्र पृथ्वी मे पाय,
शंकर सहाय तौ भयंकर टारबरे ।।[1]

इस प्रकार श्रीरामनाथ ज्योतिषी ने इस काव्य मे मुख्यतः वेदान्त आधारित ब्रह्म की व्याख्या तथा प्रभु के सगुण रूप का वर्णन किया है ।

सिद्धार्थ

ईश्वर को इस महाकाव्य मे ब्रह्म के रूप मे निरूपित किया गया है तथा उसे महाशून्य' की संज्ञा दी गयी है । भगवान कृष्ण के उपदेश के माध्यम से वर्णन करता है कि ब्रह्म ऐसा शून्य है जिससे आकाश भी स्थूल प्रतीत होता है । बड़े बड़े महासागर भी ब्रह्म की थाह नहीं प्राप्त कर पाते है । उसका आदि और अंत ब्रह्म और विष्णु जैसा एवं कर्ता देवता भी नहीं समझ पाते है । वह जगत की अखण्ड सत्ता वाला तथा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मूल है-

ऐसा है वह शून्य ब्रह्म जिससे आकाश भी स्थूल है
पारावार अगाध भी न जिसकी पाते कभी थाह है ।
जाना आदि न अंत भी न जिसका ब्रह्मा तथा विष्णु ने
सत्ता है जिसकी अखण्ड जग मे ब्रह्माण्ड का मूल जो ।[2]

वह परब्रह्म परमात्मा इन्द्रियों की तो बात ही क्या मन और बुद्धि से भी परे है । वह मनुष्य के लिए कल्पनातीत है केवल परमात्मा की दृष्टि पर संसार ही दृश्य है-

---

1- श्रीरामचन्द्रोदय काव्य पृ0 243 रामनाथ ज्योतिषी
2- सिद्धार्थ पृ0 285 अनूप शर्मा

जो है गोचर इन्द्रियों को, न मन को तो नेत्र की क्या कथा?
अगोचर प्रभुता मनुष्य-मति का जो कल्पनातीत है ।
दृश्य केवल कार्य कारणमयी संसार की योजना
धूमी जो जग जाल कर वश में उसका की सुराराधिता ।।[1]

कवि का विचार है कि ब्रह्म के अधीन होकर ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना तथा श्रीनाथ पालन-पोषण करते हैं । कवि ने ब्रह्म की इस सृष्टि में कर्म को विशेष महत्व दिया है तथा त्रिदेव तक को कर्म के वशीभूत तथा पराधीन बताया है । कवि यह मानता कि केवल ब्रह्म शक्ति ही काल और कर्म आदि से रहित और परे है-

ब्रह्मा नित्य अपार सृष्टि रचते श्रीनाथ है पालते,
शंकर है प्रतिकार नष्ट करते संसार सारी उसे ।
क्या आश्चर्य त्रिदेव कर्म वश है, सारे पराधीन है
एक केवल ब्रह्म शक्ति रहित जो कालकर्मादि से ।।[2]

कवि यह मानता है कि ब्रह्म की शक्ति ही समस्त चराचर में व्याप्त है तथा उसी के बल पर समस्त व्यापार चल रहा है । राजा को रंक बनाने और रंक को राजा बनाने में सर्वोपरि शक्ति ही ब्रह्म के इंगितों पर कर्म के वेश में विश्व में व्याप्त है-

---

1. सिद्धार्थ पृ0 283 अनूप शर्मा
2. वही पृ0284

सोता रह निश्चिन्त मध्य, उठता प्रलय में भूप हो,
तथा भी क्या अकिंचन कभी, सार निस्सार है ।
ऐसा वह, अलक्ष भेद-युत सी ब्रह्माण्ड में घूमता
भू में क्या स्थिरता महान गुरु क्या, विश्राम क्या, शान्ति क्या?

देखो शान्ति सनातनी वह यही है धर्म के वेश में,
धारे है यह-आत्मादि सबको जो धर्म के नाम पे
कल्याणी जग का निर्माण करती है विद्या स्वर्णोन्मुखी
ऐसी शाश्वत रूपिणी विदिता है आदि है अंत है ।।[1]

इस प्रकार इस महाकाव्य में कवि ने परमात्म की सत्ता विद्यमान तथा समस्त ईश्वरीय व आत्म आदि तत्वों व समस्त धार्मिक दृष्टि और धर्म आदि से निर्लिप्त व निर्बन्ध बताया है ।

कामायनी

कामायनी दार्शनिक दृष्टि से आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है उसमें विभिन्न प्रकार के दर्शनों का समन्वय साकार है । कामायनी में ईश्वर ईश्वर न होकर ब्रह्म है और उसे सर्वव्यापक के रूप में चित्रित किया गया है । डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के शब्दों में प्रसाद जी की ब्रह्म सम्बन्धी धारणा उनकी दार्शनिक मनोदृष्टि की ही भांति व्यापक है । उन्होंने उसे निर्गुण एवं सगुण, ज्ञान गम्य तथा प्रेम गम्य, रौद्र तथा कोमल सभी रूपों देखा है ।[2]

1- सिद्धार्थ पृ0 284 अनूप शर्मा

2- प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा पृ0 231 डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

प्रसाद जी का ब्रह्म तत्व कामायनी मे अति रहस्यमय है । जिस प्रकार कबीर ने कहा था। "मै का जाो राम को नैना कबहु न दीठ" उसी प्रकार प्रसाद जी कामायनी मे कहते है " तुम कुछ हो ऐसा होना भान । मै ईश्वर की सत्ता तो स्वीकार करते है किन्तु वह परम सत्तावान परम शक्ति शाली जिसके इंगितो पर दिन रात चलते है ग्रह नक्षत्र नाचते है और सम्पूर्ण सृष्टि जीवन की अनुभूति पाती है वह क्या है? कैसा है कहा नहीं जा सकता-

उपनिषदों मे ब्रह्म को रहस्यमय सर्व कारण, सर्वान्तर यामी सर्व नियन्ता, परम प्रकाश व विराट रूप मे वर्णित किया गया है । ईशावास्य उपनिषद केन उपनिषद व श्वेताश्वर उपनिषद मे ब्रह्म के इस स्वरूप की व्यापक व्याख्या की गयी है । वहाँ कहा गया है-

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।[1]

× ×

यस्यामतं तस्यमतं मतं यस्य न वेदस
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां ।।[2]

प्रसाद के साहित्य और विशेष कर कामायनी मे ब्रह्म की औपनिषदिक धारणा विशेष रूप से अभिव्यक्त हुयी है । वैवस्वत मनु "ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण मे अपनी असमर्थता इस प्रकार प्रकट करते है-

---

1- ईशावास्योपनिषद 5/5
2- केन उप0 2/3

महत्तर है वे निरंजन निराकार, गुणाकार होते हुए भी गुणातीत सर्वातीत तथा परात्पर है । इसलिए महेश का रूप किसी को ज्ञेय नहीं है । उसके संबंध में वैचित्र्य के कारण भ्रान्त धारणायें बन जाती हैं ।[1]

डा0 द्विजेन्द्र स्नातक के अनुसार कामायनी में शिव के पांच रूप संहारक, सृष्टा मायायोगी मन्त्रविद और नटराज प्रस्तुत किये गये हैं और शक्ति की दृष्टि से शिव पांचों रूपों में सामने आते हैं- प्रकाश रूप (चित शक्ति स्वातंत्र्य शक्ति आनन्द शक्ति) चमत्कार इच्छा शक्ति, आकर्षात्मकता (ज्ञान शक्ति) और सर्वाकार योगित्व (क्रिया शक्ति) ।[1]

शैव दर्शन में शिव को परम दुर्गम तथा रहस्यमय बताया गया है प्रसाद के साहित्य और विशेष कर कामायनी में शिवत्व के प्रति रहस्यमयता पद पद पर परिलक्षित होती है देखिए-

हम कहते हैं जो खोलो
छवि देखूंगा जीवन धन की ।
आवरण स्वयं बनते जाते हैं,
भीड़ लग रही दर्शन की ।।[2]

जीव सदा सर्वदा ब्रह्म के दर्शन की इच्छा रखता है किन्तु अविवेक के कारण अपने ही पाश में आबद्ध हो जाता है । कामायनी की 'श्रद्धा' भी परमशिव के रहस्यमय स्वरूप का चिन्तन करके आश्चर्य चकित हो जाती है-

---

1- कामायनी दर्शन पृ0 115 श्री द्विजेन्द्र स्नातक
2- कामायनी काम सर्ग प्रसाद

नील गरल से भरा हुआ
        यह चन्द्र कपाल लिये हो ।
इन्हीं निमीलित ताराओं में
        कितनी शांति पिये हो ।
अखिल विश्व का विष पीते हो
        सृष्टि जियेगी फिर से ।
कहो अमरता शीतलता इतनी
        आती तुम्हें किधर से ।
अचल अनन्त नील लहरों पर
        बैठे आसन मारे ।
देव कौन तुम झरते तन से
        श्रम कण से ये तारे ।[1]

सामान्यतः प्रसाद ने कामायनी में उपनिषदों में वर्णित व शैव दर्शन के आधार पर ही ब्रह्म का स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है । प्रसाद जी का ईश्वर तत्व पूर्णतः रहस्य के आवरण में छिपा हुआ तथा अनिर्वच व अज्ञेय है किन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विश्व व्यापक तथा विश्वोत्तीर्ण भी है ।

पार्वती

शैव दर्शन से प्रभावित इस महाकाव्य में ब्रह्म रूप शिव को समस्त विकारों से विहीन निर्विकार निर्लिप्त चित्रित किया गया है शिव के

1-कामायनी -वही वही पृष्ठ

स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि वे चर्म धारण किये हैं और शरीर पर चिता भस्म लगाये हुए हैं । वे पूर्ण अन्तर्लीन और निश्चल हैं समाधि लगाये हुए शिव अत्यन्त शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं-

चिताभस्म विभूति भूषित देह पर धार चर्म,
उपरिमित कर धारणा में इन्द्रियों धर्म .

अचल पर आसीन निश्चल देह है निःस्पन्द
पूर्ण अन्तर्लीन करके नयन दोनों बन्द ।

पार न पाते जिस अखण्डित ज्योति का ध्रुव ध्यान
जिस अपरिमित दीप्ति के आलोक से द्युतिमान
आत्मस्थित हो हुए शिव अचल समाधि विलीन
ज्यों अथाह है सिन्धु निश्चल धारा चित विलीन ।

सिंह चर्मासन अचल पर अचल एक स्वरूप,
ध्यान मुद्रा में सुशोभित योग के अनुरूप,
शिव घनीभूत अचल कैलाश कूट समान,
भस्म भूषित देह की अत्यन्त शोभायमान ।[1]

कवि ने समाधिस्थ लीन शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें लास्य और ताण्डव से भी वर्जित विरत और प्रशान्त बताया है-

लास्य और ताण्डव उभय से विरत पूर्ण प्रशान्त
मग्न कर कैलाश का नीरव निभृत एकान्त
शून्य अपने चिन्त्य हो ही चिन्तन साधना लीन
कल्प से भास्वर हुए शिव साधना में लीन ।।[2]

1- पार्वती पृ० 69 भारती नन्दन
2- वही

इस प्रकार कवि ने शिव का वर्णन परमेश्वर रूप में किया है। उन्हीं कवि ने ब्रह्म के समस्त गुणों को भी समाहित किया है।

जय भारत

महाभारत की कथा वस्तु पर आधारित इस महाकाव्य में कवि ने ईश्वर को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। अर्जुन मोह के प्रसंग में जब श्री कृष्ण अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाते हैं तो कृष्ण का व्यक्तित्व कृष्ण का व्यक्ति न रहकर विराट ब्रह्म का रूप हो जाता है। जिसमें समस्त गुण नक्षत्र समाहित हैं। समस्त ब्रह्माण्ड समाहित है। समस्त दिशाएं समाहित हैं। कुरुक्षेत्र में खड़ी सेना और कौरव पाण्डवों की तो उस विराट रूप में बिसात ही क्या है-

उठाई अर्जुन ने जो दृष्टि
सामने थी क्या अद्भुत सृष्टि।
बनी पल में आकृति उत्ताल
उठे मुख से जल जैसे ज्वाल।

पार्थ ने पाई दृष्टि विशेष
यदपि दुष्प्राप्य था वह उन्मेष
भूमि से नभ तक चित्राकार
व्याप्त था देव पुरुष अपार।

प्रभा से व्यापी दिशाएं चार,
प्रकट था प्रभु का रूप विराट।
दीप्त था बाहु उदार भुजा भेद,
देख तक थे किरणों के तेज।

पंखुरियों मे अकाम कल्पना अकाम कामना मधु-पराग

दक्षिण के मीठी आकुलता, आकुलता की पहली आग ।

पल्लव पल्लव मे कुछ सिहरन सिहरन मे रस रस मे ज्वार ।

अकाम कल्पना अकाम कामना, दंशन, सिहरन, ज्वार ॥[1]

कवि ने एक स्थिति के उपरान्त आत्मा को ही परमात्मा के रूप मे भी चित्रित किया है जिससे उसके अद्वैतवादी होने की पुष्टि होती है । मनु के भावों के माध्यम से कवि के ये विचार द्रष्टव्य है-

रागिनि मे हू आज अपारा अगाध
मेरे चारों ओर तैरती आत्मा फैला पसार ।
जैसे स्वर्ण विहग
लहराती पांखें, बरसाती उर्मिल स्वर मधु-धार
जैसे बीन अनग
आत्मा का स्वर उठता अपर मेघों के उस पार
जैसे पवन हिलोर
मुझ बीच हू का अंचल पट है जो झुमार
झुकता भाव विभोर
आत्मा का स्वर तिमिर घनों को भेद ॥[2]

कवि ने परमात्म तत्व की अपनी इस कृति मे महाशून्य या महाकरुणामय आदि कहकर उसके दिव्य गुणों का भी संकेत किया है-

---

1-प्रवेश पृ05 केदारनाथ मिश्र प्रभात

2-वही 155

जीवन को करे पूर्ण देना ईश्वर ।
जो व्याप्त निखिल जीवों में शाश्वत निर्भर ।।[1]

कवि यह मानता है कि परमात्मा जो चित शक्ति में जीवन का उन्मेष करके उच्छ्वसित प्राणों में श्वास प्रवाहित करता है । वह केवल प्रबोध मात्र ही नहीं है बल्कि ऐसा अमृत स्पर्श भी है जिससे बहिरंग प्रसून भी प्रति खिल उठता है । उसका प्रति शीत अमृत रस बर्षी है । उससे ही यह जगत भास्वर है वह महत है । उस पर सृष्टि निछावर है-

वह चिदुन्मेष करता जीवन उच्छ्वसित
प्राणोच्छ्वसित हो ज्यों भरता श्वास प्रवाहित
वह मात्र प्रबोध न अमृत स्पर्श अति शीतल
खिल उठता बहिरंग प्रसून सा प्रमुदित ।।

ईप्सित है उसके रस सामर्थ्य पहला पर
रोमांचित शोभा मूर्त उस छवि पर ।
वह ज्योति ज्योतियों की जिससे जग भास्वर
वह महत सृष्टि आशय सा स्वयं निछावर ।।[2]

प्राण का वर्णन करते हुए कवि ने अन्य नाम भी दिया है तथा इस प्राण का महत्व बताते हुए उस अन्न की इस का आश्रय स्वीकार किया है । कवि यह मानता है कि प्राण आनन्द रूप है उससे ही जगत सृष्टि का उद्भव हुआ है । किन्तु इस इसके बाद कवि ने ईश्वर का सर्वांग दर्शन सब में ही

1- लोकायतन पृ0225 सुमित्रानन्दन पंत
2- वही 229

कवि ने यह भी धारणा की है कि ब्रह्म से विरहित होकर यह संसार व्यर्थ है। क्योंकि ब्रह्म इस सृष्टि की शोभा का कारण है वही इस भव जीवन का प्राण है-

जग जीवन विरहित ब्रह्म निरर्थक शून्य स्वर
वह रिक्त ज्योति जिसमें न सप्त रंग के स्तर ।
जो सर्व शून्य सत्ता में उर करते लय,
वे दोष्यग्रसन साधना वंचित होते क्षय ।

शून्य ही ब्रह्म समग्र जीवों का आश्रय,
सर्वोपरि उसी से उद्भव पालन लय
चिर प्राण शक्ति से ओत प्रोत सकल तन
सर्वांगपूर्ण अनुप्राणित जिससे भव जीवन ॥[1]

इस प्रकार कवि ने ईश्वर को सर्व शक्तिमान व आत्मा का अंशी स्वीकार करते हुए उसे जगत का सृष्टा माना है किन्तु कवि का आदेश है कि जीव धारी ईश्वर का दर्शन सर्व की सुरक्षा में ही करें ।

जानकी जीवन

जानकी जीवन में भी राम कथा के ही एक अंश पर कवि ने अपने मन्तव्य का प्रयोग किया है अतएव इसमें भी 'राम' को ही ईश्वर के रूप में देखा गया है । जानकी जीवन के राम भी दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं । कवि राम की राजसत्ता पर विजय का सर्वोत्तम साधन मानता है । राम के मुख से

1-लोकायतन पृ0242 सुमित्रानन्दन पंत

उदित हो हि एक संग भी रविसहस्त्र आकाश,
तासु महात्मा कान्ति सम, दिखा हि तो कछु-कछु भास ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने ईश्वर को सर्वशक्तिमान एवं नियंता माना है । कवि के अनुसार कृष्ण ही परमेश्वर है ।

विदेह

यह महाकाव्य दार्शनिक दृष्टि से बड़े ही महत्व का है क्योंकि इसमें ईश्वर के संबंध में बड़ी ही गहनता से विचार प्रस्तुत किये गये हैं । काव्य के प्रारम्भ में कवि ने आशा नाम की एक ऐसी महिला से ईश्वर के संबंध में विचार व्यक्त कराये हैं जो पति के शोक से विह्वल है उसका पति दिवंगत हो गया है । अतएव वह प्रलाप की स्थिति में कहती है कि ईश्वर कुछ नहीं है चतुर मानव ने ही ईश्वर का निर्माण किया है । जिसे मानव निर्मित सृष्टि का सम्राट कहता है वह स्वार्थों की भावना का ही एक अंग है और कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है-

पर निर्मित सृष्टि-सम्राट जिसे कहते ईश्वर
कल्पना का केवल स्वार्थों की भावना की
भयप्रेरित अतिशय यह वस्तु भी तो केवल
जिसकी लहरों पर नृत्य कर रहा पाप और कुछ नहीं यहाँ
ईश्वर का निर्माता केवल है चतुर मनुज
जो आडम्बर का जाल यहाँ फैलाता है
कहता है ज्ञान शिखर पर चढ़
वह

1- विदेह पृ0 20 पोद्दार रामावतार अरुण

है भाग्य मनुज के कर्मों का जीवन प्रकाश ।
जिसका निर्माता ब्रह्मा, अगोचर सीमाहीन, अमर ईश्वर ।।[1]

ब्रह्म के संदर्भ में व्यापक विवेचन कवि ने जनक की सभा में याज्ञवल्क्य और गार्गी के बीच संवाद के द्वारा भी प्रस्तुत किया है। कवि ने इस प्रसंग में अक्षर ब्रह्म वाली औपनिषदिक विचारधारा पर ही बल दिया है। कवि के शब्दों में देखिए-

अक्षर में ही है गार्गि सुनो -

अक्षर न स्थूल अक्षर न सूक्ष्म
यह गुरु, लघु लाल द्रव्य छाया, तम वायु भी आकाश नहीं
मन प्राण तेज वाणी, लोचन रस, गन्ध न यह
बाहर भीतर कुछ भी न माप है अक्षर में
खाता न स्वयं वह कुछ कोई भी उसे नहीं खा पाता है
अक्षर अनुशासन और प्रशासन में रवि शशि
धरती द्युलोक आकर्षण में केन्द्रित प्रतिपल
अक्षर अन्तर्गत ही निमिष
इसके अन्तर्गत हो मुहूर्त दिन रात मास, ऋतु संवत्सर
है वही दीन है वही दीन बस जाना न जो अक्षर अनुभव
या क्या नहीं अनुभूति पूर्ण विमल ज्ञान का विन्दु सत्य ।

इस संदर्भ में कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि ब्रह्म प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञानी साधक को कंचन का प्रलोभी नहीं होना चाहिए। कंचन से कवि का तात्पर्य सांसारिक उपलब्धियों से है। याज्ञवल्क्य ने जब शास्त्रार्थ में गौएं प्राप्त कर ली थी वे उन्हें वितरण की बात वहीं उपदेश से करते

1- विराट पृ० 47-48 पोद्दार रामावतार अरुण

दिखाए गए हैं। कवि ने इस प्रसंग के माध्यम से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा ज्ञान रूप है। याज्ञवल्क्य का कथन इस प्रसंग में उल्लेखनीय है-

केवल ज्ञानोदभव है स्वर्ग जगत पर ब्रह्म जहाँ ।[1]

इस प्रकार कवि ने इस कृति में ब्रह्म को ज्ञान के रूप में स्वीकार किया है तथा ज्ञान को ही समस्त उपलब्धियों का दाता यहाँ तक कि मोक्ष प्रदाता तक स्वीकार किया है।

रामराज्य-

इस महाकाव्य की कथा यद्यपि भगवान राम के जीवन से ही संबंधित है तथापि कवि का मूल उद्देश्य स्वतंत्र भारत के लिए आदर्श रामराज्य की झाँकी प्रस्तुत करना रहा है। अतएव इस कृति में राम के दिव्य गुणों का कम उनके महामानव रूप का चित्रण अधिक है। दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म आदि विषयों पर छुट-पुट विचार अवश्य कवि के मिलते हैं किन्तु कोई व्यापक और विस्तृत व्याख्या प्राप्त नहीं होती है। कवि ने इस विश्व को ईश्वर या पूर्ण ब्रह्म का अंश स्वीकार करते हुए ब्रह्म की व्यापकता और शाश्वत सत्ता पर प्रकाश डाला है। तथा बताया है कि प्रेम तत्व के विस्तार द्वारा जब मानव क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठ जाता है तब उसे परमेश्वर की प्राप्ति होती है-

विश्व की प्रति वस्तु है उस पूर्ण का ही अंश
अंश सीमित प्रीति केवल मात्र भव का दंश।
अल्पगुण से क्षुद्र सीमा का करो विस्तार
कुछ न रह जाये रहे बस प्रेम पारावार।।

1- विद्या0 पोद्दार रामावतार,

अरुण रामायण

राम के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य के नायक राम ही परमात्मा है। कवि ने स्थान स्थान पर व्यक्त किया है कि राम ही सृष्टि के कण कण में व्याप्त है उनके अतिरिक्त इस सृष्टि में सार तत्व कुछ नहीं है। जिस समय राम के बाण से आहत बालि प्रभु के समक्ष अपने हृदयोद्गार व्यक्त करता है तो वह ईश्वर के रूप पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि हे प्रभु आप विश्व प्राण है। समस्त कार्यों के कर्ता आप ही है जीवात्मा में परमात्मा की लीला तरंग आपके ही कारण है। समस्त इच्छाओं और कर्मों में आपका ही वास है। आप कण कण और सभी जाति तथा धर्मों में परिव्याप्त तुम्हीं पंच तत्वों में अस्तित्ववान हो और सभी पंच तत्व तुममें अस्तित्ववान है-

> हे प्राण हरण करने वाले हे विश्व प्राण।
> तुम मृत्यु लोक के सभी प्राणियों के महान
> मेरी रति गति में सभी प्रगति में तुम्हीं एक
> हो पाप-पुण्य में तुम्हीं तुम्हीं सत्-असत् विवेक
> जीवात्मा में परमात्मा की लीला तरंग
> कामना तुम्हीं भावना तुम्हीं तुम हर उमंग
> इच्छा में तुम कर्मों में तुम, धर्मों में तुम
> कण कण में तुम हो सभी जाति धर्मों में तुम
> तुम पंचतत्व में हो कि तुम्हीं हो पंचतत्व ?
> आभासित मरण घड़ी में ही प्रभु का महत्व ।।[1]

---

1. अरुण रामायण पृ0 414 पोद्दार रामावतार अरुण

अतएव स्पष्ट है कि कवि ने परब्रह्म परमात्मा को सर्वनियंता तथा समस्त कार्यों का कर्ता माना है। कवि का विचार है कि समस्त सृष्टि राम के इंगितों पर ही चल रही है और वे ही उसके रोम रोम में व्याप्त हैं।

भगवान राम

भगवान राम काव्य अयोध्या के राजा राम के जीवन पर आधारित है अतएव इस काव्य में राम के चरित्र के माध्यम से ही ईश्वर के स्वरूप को व्यक्त किया गया है। कवि ने यह माना है कि ईश्वर आश्रितों पर सदैव कृपा करता है। राम छोटे बड़े सभी पर कृपा करने वाले हैं। वे विघ्न हर हैं और विष्णु व महेश आदि से भी अधिक दिव्य गुण से सम्पन्न हैं-

आश्रितों से नित्य रखता राम का सम्बंध है
लोक सेवा धर्म उनका मुख्य जीवन अंग है।
पौर जन से सुजन प्रतिदिन पूजते हैं मान से,
मुख्य का कर्तव्य पालन देखते हैं ध्यान से।

कौन है छोटा बड़ा जिससे न मिलते राम हैं,
लोचनों की ज्योति उनके मुख पे विश्राम हैं।
दिव्य गुण मण्डित सभी विधि विष्णु और
महेश हैं।
विघ्नहार कल्याणकर हैं प्रजा के विघ्नेश हैं।'

ब्रह्म के स्वरूप की चर्चा करते हुए कवि ने उसे सत्य रूप बताया है। कवि का विचार है कि वेदों ने ब्रह्म को सत्य के रूप में व्याख्यायित किया है तथा सत्याचरण द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति संभव है-

---

सत्य ब्रह्म है सत्य धर्म है कहते आगम वेद

सत्याचरण धर्मपालन में स्वरूप न रखना भेद ।

दुष्कृत सत्य से ही होती है जब ब्रह्म की प्राप्ति

सत्य प्रतिष्ठित अखिल ब्रह्म की होती पूर्ण समाप्ति ।।[1]

देवताओं के द्वारा राम की वंदना कराकर भी कवि ने राम के व्यक्तित्व को ईश्वरीय गुणों को अच्छे ढंग से स्पष्ट किया है । देवता गण राम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि राम के रूप में दो निर्गुण और सगुण रूप से सम्पन्न ब्रह्म प्रकट हुआ है । भगवान राम भक्तों पर कृपा करने वाले तथा अपार करुणा सम्पन्न हैं । उनकी कृपा से सब पापों का सब ही विनाश हो जाता है तथा जीवन की विपदाएं पास भी नहीं फटकती । वे असुरों के हन्ता तथा सज्जनों के रक्षक हैं-

असुर निर्दय निष्ठुर थे सभी

अमर भी जिनसे भयभीत थे ।

वार मुरारि प्रचण्ड अमोघ था

वध जिन्हें तुमने क्षण में किया ।।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री मनबोधन लाल जी ने राम के चरित्र में ईश्वर के गुणों से सम्पन्न मानते हुए परमात्मा रूप राम को सर्व शक्तिमान दिव्य गुणों से युक्त भक्तवत्सल धारी तथा सर्व कल्याणकारी माना है ।

1- भगवान राम पृ0 54 श्रीमनबोधनलाल

2- वही पृ0324

संक्षेप मे उपर्युक्त सभी महाकाव्यों मे ईश्वर की सर्व व्यापकता एवं अंतर्निहित सत्ता की विवेचना की गयी है। इस कार्य मे कुछ कवियों ने जहाँ बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तों को आधार बनाया है वहीं कुछ ने अरविन्द दर्शन को। अधिकांश कवियों ने ईश्वर का वर्णन वेदान्त के आधार पर ही किया है। वेदान्त का भारतीय जीवन मे गहन महत्व है और उक्त महाकाव्यों की दार्शनिक चेतना पर विचार करते हुए सबसे अधिक प्रभाव भी उसका ही परिलक्षित होता है।

पंचम अध्याय

आलोच्य काव्यों में जगत का स्वरूप

पंचम अध्याय

आलोच्य काव्यों में जगत का स्वरूप

वेदान्त में जगत को नश्वर माना गया है किन्तु कुछ भारतीय दर्शन इसे सत्य और जीवन को सत्य का साधन मानते हैं। वेदान्त के अन्तर्गत भी कुछ दार्शनिक जगत को ब्रह्म की स्फूर्ति मानकर सर्वथा असत्य या मिथ्या नहीं स्वीकार करते हैं। चार्वाक दर्शन जगत को पूर्णतः सत्य मानता है तथा मोक्षादि को अन्तर्गत अभाव की संज्ञा देता है। सामान्यतः जगत परब्रह्म की रचित शक्ति द्वारा निर्मित एक विलक्षण और विशाल रचना है जिस प्रकार परब्रह्म के रहस्य को जान पाना नितान्त कठिन और असंभव भी है उसी प्रकार उसकी इस रचना के संबंध में अनुमान तो बहुत से लगाये जा सकते किन्तु अधिकार ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रिय प्रवास-

भारतीय चिन्तन धारा के अनुरूप इस महाकाव्यकार ने भी संसार को गतिशील एवं परिवर्तनशील माना है। प्रारंभ में कवि ने लिखा है कि संसार उस चित्रकार की चित्रमयी रचना है जिसे देखकर उसे भी दुःख होता है। क्योंकि यह सम्पूर्ण रचना प्रत्येक समय किसी न किसी संकट में लीन रहती है- 'धाता ने ही दुखित भव के चित्रों को विलोका।'[1]

1- प्रिय प्रवास 7/1

संसार की सुख दुःख मयता का कारण कवि संसार की परिवर्तनशीलता को मानता है। यहाँ एक क्षण सुख है तो दूसरे ही क्षण दुःख है। जहाँ एक क्षण पूर्व रस प्लावित था वहीं दूसरे क्षण विषाद का स्रोत प्रवहमान हो उठता है-

कुछ घड़ी पहले जिस भूमि में प्रवहमान प्रमोद प्रवाह था।
अब उसी रस प्लावित भूमि में बह चला खर स्रोत विषाद का।[1]

इसी प्रकार कवि कहता है कि एक क्षण पूर्व जहाँ पवन में सुन्दर स्वर लहरी गुंजार करती थी वहाँ सुन्दर आलाप भरे जा रहे थे वहीं नीरवता आने में दूसरा क्षण भी नहीं लगता है-

मधुमय थी स्वर की लहरी जहाँ
पवन में अधिकाधिक गुंजती।
कल आलाप सुना जिस था जहाँ
अब वहाँ पर नीरवता हुई।[2]

कवि यहीं ही सूक्ष्मता से विश्लेषण करता हुआ कहता है कि यह परिवर्तन मानव तक ही सीमित नहीं है उसका प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ता है। ऋतु परिवर्तन आदि को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। कवि कहता है कि जो कमल अत्यन्त सौन्दर्य एवं माधुर्य के साथ सरोवर में खिलता है उसकी पंखुड़ियों को हिम पात विनष्ट कर देता है। इसी प्रकार शांत चन्द्रमा की उज्ज्वल और धवल अमृतमयी कलाएं राहु द्वारा ग्रसित की जाती है। साथ ही कवि का विचार है कि जिस गेह में सुख अपनी सर्वांगता

1- प्रिय प्रवास 1/20

2- वही 1/50

ईश्वर का शरीर भी है और उसका लीला धाम भी क्योंकि जागतिक पदार्थों के रूप में ही ईश्वर यहाँ नाना प्रकार की क्रीडाएँ करता है । गुप्त जी ने 'साकेत' में जगत को कर्म क्षेत्र बताया है तथा इसकी नित्यता प्रतिपादित की है-

> बहु बार जन तुम सही यह शोक
> सतत कर्म क्षेत्र है नर लोक ।।[1]

वशिष्ठ जी के मुख से जीव के संबंध में उन्होंने यह भी बतलाया है कि निरंतर कर्म में लगे रहने के बाद मरने पर उसे कुछ क्षण के लिए विश्राम का अवसर प्राप्त होता है परन्तु जन्म के उपरान्त वह पुनः जागतिक कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है-

> मरण है अवकाश जीवन कार्य
> कह रहा हूँ आप मैं आचार्य ।।[2]

डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार जीव और ईश्वर की अभिन्नता के समान ही ईश्वर और जगत भी अभिन्न है और वह अन्तर्यामी होने के कारण जगत में समाया हुआ है । परन्तु अभिन्न है और होकर भी ईश्वर कुछ विशिष्ट है कुछ अलौकिक है वह जगत के उचित गुणों से युक्त नहीं है अपितु वह विशिष्ट गुणों वाला है । इसी धारणा का उल्लेख करते हुए कवि ने साकेत में कुशल के मुख से राम की अभिन्नता एवं अभिन्न होकर भी जगत से विशिष्टता अथवा अलौकिकता का निरूपण

1-साकेत सप्तम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त
2-वही.

किसका वैभव देख सकेगा ?
काल व्याल में लगा रहेगा ।
व्याघ्र बात भी नहीं कहेगा
टूटेगा पर चमकी ।[1]

तत्ववेत्ताओं ने संसार की नश्वरता पर भी प्रकाश डाला है । उनकी दृष्टि में यह जगत दुःख मय है । इसमें सुख एवं आनन्द की अपेक्षा दुःख, भय शोक आध व आपदाएँ आदि अधिक हैं । जगत के इस रूप को भी कवि ने साकेत में प्रस्तुत किया है-

इस भव पर है अखिल वितान तना
जिसके आश्रित दुःख, शोक, भय, आपदा ।।[2]

विरहिणी

विरहिणी महाकाव्य में कवि श्री सोम ने जगत का वर्णन उपनिषदों के आधार पर किया गया है । कवि ने यह माना है कि यह जगत मिथ्या है इस दृष्टि से विरहिणी पर अद्वैत दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है । कवि कभी कभी जगत को कल्पना कहता है तो कभी माया, कभी मृगतृष्णिका कहता है तो कभी पानी या छलना में तप होने वाली कहता है । कभी कवि इसे प्रकृति पुरुष की वस्तु या जीव का प्रकाशन भी कहता है-

---

1- गुप्त और साकेत पृ0 202-205 राजकुमार

2- साकेत पंचम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

यह रचना यह कल्पना कहो या कहना
यह सृष्टि कहो माया,प्रपंच या छलना ।
यह प्रकृति-पुत्रिका तत्-ज्ञानी या ललना
यह प्रकृति पुरुष की मधुर बीन का बजना ।[1]

अन्त में वर्णन में कहीं कहीं कवि ने रहस्यात्मक पुट भी दिया है जो कि छायावादी धारा से प्रभावित प्रतीत होता है-

करते है इसकी सृष्टि, कल्प भावित क्यों ?
यह पूर्ण व्यवस्था-उचित नियम शासित क्यों ?
गति नियतिबद्ध यह कन-तुल्य बाधित क्यों ?
उद्देश्य लक्ष्य से प्रेरित परिभाषित क्यों ।।

यह सूर्य चन्द्र,तारकावली ज्योतित क्यों ।
यह भूप,ज्वालामुखी अथवा प्रभा पोषित क्यों ?
ब्रह्माण्ड मण्डली मंडल से मोहित क्यों ?
यह दुग्ध धवल ज्योत्स्ना प्रकाश शोभित क्यों ?[2]

कवि ने बताया है कि तमाम ऋषियों मुनियों ने जगत के रहस्य को समाधि द्वारा जानने का प्रयास किया किन्तु उसका था ना जाना जाना

1- विरहिणी-रचना पृ० 55, ईश्वरीराम शर्मा ब्रज

2- वही

यही ज्ञान और ब्रह्म तत्व है जो जीव या ईश्वर में विद्यमान है-

> पृथिवी मंगल आदि लोक जो है तमसाकुल
> बाहर ज्योतित अन्तर विन्दु-अन्तर पावक पुंज ।।[1]

श्रीराम चन्द्रोदय

रामचन्द्रोदय कार ने जगत का कर्ता भर्ता और हर्ता ईश्वर को स्वीकार किया है । वे यह मानते हैं कि प्रभु ने माया के माध्यम से इसकी रचना की है । उनकी दृष्टि से माया युत इस जगत का व्यवहार मिथ्या है । इस संदर्भ में उनके विचार शांकर वेदान्त से मिलते जुलते हैं-

> माया युत देखादि जुग
> जुगा जगा व्यवहार ।
> आपु प्रकाशित जो तिही
> जगनि प्रकाशनि हार ।।[2]

कवि श्री ज्योतिषी जी स्पष्ट करते हैं कि इस संसार में अपने प्रतीत होने वाले भवन धन धान्य, दारा, पुत्र व माता-पिता से आदि कोई साथ जाने वाला नहीं है । जीव केवल धर्म का ही भरोसा रखता है-

> धाम धरनि धन दार सुत, सेवक स्वजन परोस,
> जात न जैहै साथ कोउ, केवल धर्म भरोस ।।

× ×

1- विरहिणी पृ0 62, आ0 'सोम'
2- श्रीरामचन्द्रोदय काव्य पृ0 24। श्रीरामनाथ ज्योतिषी

इस प्रकार कवि श्रीराम नाथ ज्योतिषी ने इस काव्य में जगत को मिथ्या माना है और यह उपदेश दिया है कि समस्त प्राणियों को धर्म सम्मत कार्य करते हुए मोक्ष प्राप्त करने का उपक्रम करना चाहिए ।

सिद्धार्थ

सिद्धार्थ के कवि ने जगत में सर्वत्र ही कर्म को विशेष महत्व दिया है । उसने माना है कि यह जगत कर्म के वशीभूत है और जगत ही नहीं ब्रह्म के संकेतों पर जगत का निर्माण करने वाले ब्रह्मा विष्णु महेश आदि त्रिदेव भी कर्म के ही वशीभूत हैं । इस संसार में सब कुछ कर्म की ही गति है [illegible] बंधा हुआ और बिंधा हुआ है

प्राणी मात्र, सदैव कर्म-वश हो संसार में घूमते ।
है भगवान प्रमाण काल गति है कैसा हुआ जीव का ।।

ब्रह्मा नित्य अपार सृष्टि रचते, श्रीनाथ हैं पालते,
स्वेच्छा से प्रतिकार नष्ट करते कैलाश वासी उसे ।
क्या आश्चर्य त्रिदेव कर्म वश हैं सारे पराधीन हैं,
एक केवल ब्रह्म-शक्ति, रक्षिता जो काल-लीला-रचे काल-क्रीडित है ।

सीता रंक निशाचर-भक्ष्य, उठता [illegible] में धूप ही,
राजा [illegible] ने भी कमाया [illegible] कभी, संसार निस्सार है,
ऐसा चक्र, [illegible] भी [illegible] हो ब्रह्माण्ड में घूमता,
तू में क्या स्थिरता, महान सुख क्या, विश्राम क्या शान्ति क्या?[1]

1- सिद्धार्थ पृ0 284 अनूपशर्मा.

तथा प्रकाश की स्वामिनी है। उनकी दृष्टि से काम और शिवत्व मंडित सृष्टि प्रकाश तथा चिति की ही इच्छा का परिणाम है -

कर रही लीला मय आनन्द,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।

काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।।[1]

शैव दर्शन में काम शब्द शिव का पर्याय है और श्रेय शब्द का तात्पर्य है शक्ति यहाँ कवि ने सृष्टि को शिवत्व की मंगलता से पूर्ण चित्रित किया है।

यह विश्व चिति के अन्तर्गत उसी प्रकार आभासित है जिस प्रकार नगर मुकु[illegible]
मुकुरादि पट में आभासित होते हैं। प्रसाद का यह दर्पणवत भाव है। वे स्पष्ट करते हैं कि चन्द्र के रूप में पुरुष पुरातन मानसी लहरों में स्पन्दित अपना रूप देखता है -

वह चन्द्र किरीट रजत नग
स्पन्दित सा पुरुष पुरातन,
देखता मानसी गौरी
लहरों का कोमल नर्तन।।[2]

प्रसाद जी वेदान्त की जगन्मिथ्या वाली धारणा को स्वीकार नहीं करते है । उनकी दृष्टि से सृष्टि की उत्पत्ति न होकर आविर्भाव और प्रलय न होकर उसका तिरोभाव होता है । प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुरूप वे सृष्टि का उन्मीलन मानते है । उनकी दृष्टि से सृष्टि प्रकट या व्यक्त होती है उसे उन्मीलित करने का कार्य चितिशक्ति का है । चिति शक्ति ही अव्यक्त विश्व को व्यक्त करती है अतएव विश्व की सत्ता चिरंतन है । उनकी दृष्टि से यह चराचर मूर्त विश्व चिति का ही विराट वपु है । यह जगत हास,उल्लास,परिवर्तन, व विविध भावों से परिपूर्ण होता हुआ मंगलमय है । इसमें पूर्ण शान्ति सन्निहित है तथा ताप की परिकल्पना भ्रान्ति मूलक है । इस जगत मे जीवनधारा सत्य और प्रकाश का अजस्र प्रवाह है । यह संसार मिलन विरह व अन्य विविध परिवर्तनों से युक्त है तथा चिति का स्वरूप होने के कारण नित्य तथा शाश्वत है

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुंदर ।[1]

× × ×

उसके स्तर स्तर में मौन शांति,शीतल अगाध है ताप भ्रांति।
परिवर्तन मय यह चिरमंगल, मुस्काते इसमें भाव सकल,
हँसता है इसमें कोलाहल,उल्लास भरा सा अन्तस्तल ।।[2]

× × ×

1-कामायनी आनन्द सर्ग प्रसाद

2-वही दर्शन सर्ग

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत,
वह रूप बदलता है शत शत ।
कण विरह-मिलनमय नृत्य निरत,
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत ।[1]

प्रसाद के काव्य में आनन्दवाद का पूर्ण परिपाक और कर्मठता की विशिष्ट क्रांति जगत की नित्यता के कारण ही संभव हुई है ।

चिति शक्ति विश्व का उन्मीलन भी करती है और निमीलन भी सृष्टि का उद्भव जहां एक ओर आविर्भाव होता है वहीं दूसरी ओर तिरोभाव भी । कामायनी के मनु को प्रकृति का दुर्धर्ष रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है-

यह देखो यह दुर्धर्ष प्रकृति का इतना कम्पन ।[2]

दैवी अस्त्र शस्त्रों से मनु का घायल होना तथा महाशक्ति का हुंकार भी इसी संदर्भ में अभिप्रेत है-

अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं ।
और गिरीं मनु पर मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर ।[3]

× × ×

1- कामायनी दर्शन सर्ग प्रसाद
2- वही स्वप्न सर्ग
3- वही.

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था,
विश्व रन्ध्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था ।[1]

प्रसाद ने प्रकृति के दुर्धर्ष और भयानक रूप का वर्णन प्रलय के अंकन में भी किया है

दिग्दाहों से धूम उठे या
जलधर उठे क्षितिज तट के
सघन गगन में भीम प्रकम्पन
झंझा के चलते झटके ।
अंधकार में मलिन मित्र की
धुंधली आभा लीन हुई ।

वरुण व्यस्त थे ,घनी कालिमा
स्तर स्तर जमती पीन हुई ।
पंचभूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं के शकल निपात ।

उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात ।[2]

x x x

1- कामायनी,रहस्य सर्ग प्रसाद

2- वही चिंता सर्ग

उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों से,
चली आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी।

धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निश्वास,
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।[1]

किन्तु प्रसाद ने जगत के इस रूप का वर्णन के बाद भी उत्तर पक्ष के रूप में काल को दुख सुख से विकसित भूमा का मधुमय दान और तरल आकांक्षाओं से भरा हुआ आशा का आह्लाद स्वीकार किया है-

विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
हो रहा स्पन्दित विश्व महान,
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।।[2]

x x

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।[3]

1-कामायनी चिंता सर्ग प्रसाद
2-3 वही श्रद्धा सर्ग

पार्वती

शैव दर्शन के अनुसार सृष्टि की रचना शिव के संकेतों पर शिवा द्वारा की गयी है। शिव की आदि शक्ति है और वही सृष्टि में चेतना का संचार करती है। पार्वती के कवि ने भी इस संसार की और संसार से इतर सृष्टि को पार्वती या शिवा द्वय इस विश्व के शिवा के पद पंकजों के धूलि कणों से स्वरूप प्राप्त किया है। रवि शशि व अन्य तारकगण भी शिवा की दीप्ति से ही आभासित हैं। विश्व में जीवन का संचार भी पार्वती की कृपा से ही हुआ है। शिवा की कृपा से ही रूप, राग, रस गन्ध आदि ने स्वरूप पाया है। उसकी दिव्य शक्ति का तेज ही प्राण बनकर धरा पर अवतीर्ण हुआ है। सृष्टि में ज्ञान और काल आदि की गति भी पार्वती द्वारा ही संचालित है-

पद-पंकज के धूलि कणों के कण विश्व ने पाया,
रवि,शशि,तारों में आभासित हुई कान्ति की छाया,
सौरभ का विभूति संचारित हुई विश्व-जीवन में
आभा का आलोक रूप की संज्ञा बना भुवन में।

वह अनन्त अवकाश शून्य था नभ-मंडल बन छाया,
रूप,राग,रस,गन्ध और स्वर जिसमें अखिल समाया,
पुण्य प्रकृति की शक्ति मानो धूलि बनी धरित्री अचला
अकम्पमुखी गतिरिच जीवन की बनी शिखण्डी अचला ।।

दिव्य शक्ति का तेज अग्नि बन उतरा रविमंडल से,
प्राणवायु संचरित हो उठी स्पन्दन के सम्बल से।

श्री की व्याप्त विभूति विश्व में पंचभूत बन आई।
ज्ञान,काल,गति में जीवन ने अपनी ईच्छा पाई ।।[1]

कवि ने आगे चल कर यह भी स्पष्ट किया है कि 'श्री' के तन का तेज ही विश्व की छवि में निखरा है और उस छवि के माध्यम से ही विश्व के कवि में अद्भुत छन्द ने रूप पाया है तथा सम्पूर्ण विश्व में श्री के अंगों का सुरभि राग ही आमोदित हुआ है-

जीवन की जागृति के अविदित पावन उदय प्रहर में
छवि के कमल अनन्त खिल उठे प्रकृति के सागर में,
जीवन की विभूति बन श्री के रूप राग रस बिखरे
उनकी आभा में प्रकृति के तत्पकण ही निखरे ।।

श्री के तन का तेज रूप बन खिला विश्व की छवि में
अन्तर का स्वर अद्भुत छन्द बन जागा विश्व के कवि में
आत्मा का रस बह उर दृग से बना अमृत की धारा
हुआ अंग के सुरभि राग से आमोदित जग सारा ।।[2]

कवि ने सृष्टि क्रम का उल्लेख करते हुए बताया कि 'श्री' नारी के रूप में समाविष्ट होकर सृष्टि क्रम को आगे बढ़ाती है और नर की क्षमता को कृतार्थ करती है । कवि का विचार है कि नारी के रूप में श्री का विग्रह आदि शक्ति से सचेतन होकर धर्म के सृजन और पालन का हेतु है किन्तु जीवन के इस सागर में श्रेय और आनन्द तिरोहित हो गये हैं -

---

1- पार्वती पृ0 9 भारती नंदन
2- वही पृ010

कवि का रंजित तेज दीप्ति बन तन में सहज उमाया,
पुष्पों का राग,राग अंग का अंग राग बन आया ,
चिर अनन्त बनती जीवन की श्री विभूति सहज मन में,
आत्मा आनन्द अमृत बन आया हृद्-गुंजन में ।

हुए प्रकृति के रूप धन्य दो नयनों के दर्शन में,
हुए धन्य रस मृदु रसना के व्यंजित आस्वादन में,
बनी गन्ध आमोद घ्राण के पुलकित घ्राण-ग्रहण में
स्वर बन राग कृतार्थ हो उठे धन्य मधुर श्रवण में ।

नारी के असीम अंगों में मर्म स्पर्श का निखारा,
बिखर या आलोक गंध-रस-छविकिरणों में निखारा
यौवन के अभिजात दर्प से दीप्ति कामकुमारी
करती जीवन की कृतार्थता केन्द्रित नर की धारी ।

नारी के रमणीय रूप में श्री ने विग्रह पाया,
आदि शक्ति का धर्म सृजन औ पालन बनकर आया,
पशु का दानव-धर्म-नाश-वह हुआ सचेतन नर में,
हुए प्रेम-आनन्द तिरोहित जीवन के सागर में ।[1]

इस प्रकार श्री भारती नन्दन ने पार्वती महाकाव्य में सृष्टि की रचना का हेतु भगवती पार्वती या शिवा को स्वीकार किया है तथा यह माना है कि उन्हीं की श्री इस सृष्टि में समाहित है और उसके माध्यम से ही विकास क्रम अनुस्यूत चल रहा है ।

1-पार्वती पृ0 13-14, भारती नन्दन

जय भारत-

मैथिली शरण गुप्त ने इस महाकाव्य मे सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण परब्रह्म ईश्वर ही अमर सृष्टि के कण कण मे परिव्याप्त है । अर्जुन के प्रसंग मे कृष्ण का अर्जुन को ज्ञान इसी बात का संकेत देता है-

तभी तो इतने डेरा,
पार्थ यह विश्व क्रम मेरा ।
सभी को जो मुझमे जाने,
और उसको मुझको माने ।

दूर वह मुझसे कभी नहीं
निकट मे उसके सभी कहीं ।
योग युक्तात्मा समदर्शी
सभी मे है आत्म स्पर्शी ।[1]

कवि ने विभिन्न प्रसंगों मे इस धरा को वीर भोग्या स्वीकार किया है कृपा के तमाम समझाने बुझाने के बाद भी दुर्योधन पाण्डवों को सूई के अग्र भाग के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं होता है और कृष्ण के सुझावो का विरोध करते हुए पाण्डवों को युद्ध की चुनौती देता है । उसकी चुनौती के स्वरों के माध्यम से कवि ने स्पष्ट किया है कि यह धरती वीरो के लिए भोग्य है-

---

1- जय भारत पृ0 368 मैथिलीशरण गुप्त

यही सही यह वसुन्धरा वीरों की भोग्या,
बल से लेने योग्य, नहीं देने के योग्या ।
लोग मुझे कुछ कहें, भीरुतापर न कहेंगे,
हम यों अटवी बीच पांच अब यहाँ रहेंगे ।[1]

कवि यह मानता है कि यह जगत परिवर्तन शील है । यहाँ जो जन्मा है उसका मरण निश्चित है । यक्ष के प्रश्नों और युधिष्ठिर के उत्तरों के माध्यम से महाभारत के इस प्रसंग को प्रस्तुत करके कवि ने जीवन संबंधी तथ्यों को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है-

विविध श्रुतिस्मृतियाँ कल्याणी,
भिन्न भिन्न मुनियों की वाणी ।
गूढ़ धर्म गति, पूछूं किससे,
पन्थ वह, जो महाजन लिये ।

इससे निश्चित यही बात है-
काल लगाये हुए घात है,
क्षणों का ही क्या भरोसा,
यहाँ जिन्दे है पासा-पोसा ।

नित्यप्रति बहुजन मरते हैं,
तदपि मृत्यु से हम डरते हैं
इससे अधिक कौन विस्मय है,
जो निश्चित है उससे भय है ।

1- जयभारत- मैथिली शरण गुप्त पृ० 332

उर्वी है गुर्वी है माता,
पिता व्योम है ऊँचा ज्ञाता ।।[1]

इस दृष्टि में मानव के जीवन को कवि ने पा   के रूप में देखा है तथा बताया है कि यदि जीवन है तो जीत भी होगी और हार भी होगी किन्तु वह व्यक्ति तो जीवित ही मरा समझा जाता है जो निराश है । इस संसार में उत्साह का नाम ही जीवन है-

मनुष्य का जीवन खेल-सा है,
पासे पड़ेंगे यदि हाथ में ही,
क्या हार,क्या जीत हुई हमारी ?
निराश तो जीवित ही मरा है,
उत्साह ही जीवन का प्रतीक है ।[2]

वन वैभव के प्रसंग में कवि ने चित्ररथ और दुर्योधन के बीच वार्ता के माध्यम से भी जगत की नश्वरता का उल्लेख किया है । गन्धर्व चित्ररथ दुर्योधन से कहता है कि संसार में कोई ऐसा नहीं है जिसके पीछे काल न हो । यहाँ सभी नाशवान हैं-

मूढ़ तुझसे कितने भूपाल,
हुए हैं, होंगे विपुल विशाल
किन्तु उनके पीछे है काल,
रहा उनका ऐसा ही हाल ।

1- जय भारत पृ0 234 मैथिलीशरण गुप्त
2- पृ0204

बैठा है यहीं कहूं क्या और
तुझे भी है जो इस पर ठौर ।

समय भी है अब भी चेत अचेत
नहीं तो उजड़ जायेगा खेत ।
धर्म-ध्वजा धार कर धैर्य समेत
लौट जा जोकि नृपति-निकेत ।।

हुआ था यद्यपि मुझको रोष,
क्षमा करता हूँ तेरा दोष ।।[1]

इस प्रकार कवि ने इस ग्रन्थ में सृष्टि को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हुए इसे उसके द्वारा ही निर्मित माना है तथा यहाँ की प्रत्येक छोटी या बड़ी आशक्त या सशक्त वस्तु या व्यक्ति को नश्वर स्वीकार किया है ।

वसुंधरा-

वसुंधरा में जगत के स्वरूप का वर्णन विस्तार से किया गया है । कवि ने पृथ्वी के चित्रण के माध्यम से जगत के विभिन्न रूपों को उजागर किया है । कवि ने प्रारम्भ में जल से ही समस्त तत्वों को उद्भूत बताकर अप्रत्यक्ष रूप से जगत की कर्ता या हेतु पर ब्रह्म परमात्मा को स्वीकार किया है । चौथे सर्ग में भी कवि ने जल के भीतर ही कहीं धरा' गीत के अन्तर्गत यह विचार ध्वनित किये हैं

1- जयभारत पृ0 204, मैथिलीशरण गुप्त

जल के भीतर ही रही धरा ।

जब मचक भयानक-भमिर भर
तत्वों का विप्लव मचा विकट
अवशेष न उसका विधान रहा
धरती को खींच रहा था जल-
वह क्षुब्ध सिन्धु का जल पागल
धरती न संभल कुछ पाती थी
चुपचाप सरकती जाती थी
देखा पीछे की ओर कभी
खींचे आगे का छोर कभी
पर जल का वेग न घटता था।
विप्लव का ज्वार न हटता था।
इस खींचातानी में जल की
धारा में भीषण हलचल की ।
छिप गयी निर्बला वसुन्धरा ।[1]

वसुधा तल को कवि ने बड़े ही मनोरम रूप में प्रस्तुत किया है तथा उसके स्वरूप को श्यामला, सजला, शुभ्रा, सुमना, सुभग, सुकुमार, शारदा, सुरभित, स्निग्धा तथा अतीव उदारता से परिपूर्ण बताया है-

श्यामला, सजला, शुभ्रा सुमना, सुभग सुकुमार
सुन्दरा, मेघाम्बरा, विश्वम्भर, सुधा-धार
शारदी शस्यश्री सौन्दर्य सुधागार
सुस्मिता वसुधा सुधा-स्निग्धा अतीव उदार

1- वसुंधरा- पृ0 30 केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

है कहाँ वह एषणा अभिसार
मंजुला चित्रलेखा में प्रीति का शृंगार
कल्पना वह जो कि देती नित नये उपहार
माधवी वह जो कि करती सतत मधु संचार
दृष्टि हो जिसकी अमृत की वृष्टि प्राण-पुकार
है कहाँ वह भक्त विभक्त आहार ।[1]

कवि ने स्पष्ट किया है कि संसार रूपी कमल की पंखुड़ियाँ आलोक लोक में मर्म गान में नव विहान प्राप्त करती है । अतएव स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि में जगत का मूल केन्द्र और मूल विकास स्रोत परमतत्व की ज्ञान सत्ता ही है-

मैंने मन में सुनी मुक्त आलोक क मा मर्म गान
संसार कमल की पंखुड़ियाँ जिनमें पा लेती नव विहान ।[2]

सम्पूर्ण सृष्टि के चित्र को कवि ने तप की अनमोल धरोहर के रूप में भी देखा है जिससे स्पष्ट है कि कवि सृष्टि को ब्रह्मतत्व से अभिन्न ही स्वीकार करता है-

देखा मैंने सम्पूर्ण चित्र सम्पूर्ण सृष्टि का नव विधान
तप की अनमोल धरोहर को देखा मैंने विद्योत मान ।।[3]

1- आंचरा- पृ0 29 केदारनाथ मिश्र प्रभात
2- वही 31
3- वही.

इस प्रकार कविता के कवि ने जगत को ब्रह्म का ही एक अंश उसकी ही विभूति के रूप में स्वीकार किया है तथा उसमें समस्त दिव्य और सौम्य गुणों का दर्शन किया है ।

लोकायतन में जगत का स्वरूप

लोकायतन के कवि ने जागतिक सृष्टि को ईश्वर द्वारा निर्मित माना है । कवि यह मानता है कि विश्व व्यथा में तप रहा है और पृथ्वी पर प्रकाश के वर्धन के उद्देश्य से अंतर्यामी को तन मन अर्पण कर रहा है-

तपता यह विश्व व्यथा में बनने कांचन
यों राग द्वेष स्तम्भ का जीवन प्रांगण
भू पर बरसाने रस-प्रकाश का प्रतिक्षण
अंतर्यामी को करता तन मन अर्पण ।।

भू मन की ईर्ष्या स्पर्धा से हो जाग्रत
यौवन रहता प्राणों का अन्तर्मुख क्षत ।
कुंठा, क्रोध, मत्सर्यो से दुख चिक्कण
सेवन करता अक्षय देवों का भोजन ।।[1]

कवि यह मानता है कि यह जगत कुरूपता, दारिद्र्य, तमिस्रा एवं अंधी आस्थाओं अस्मिता व अविद्या द्वारा शासित है । यह संसार युद्ध और गोत्रों में बंट कर स्वर्ग बनने के स्थान पर तमस का खण्डहर बन गया है । इन्हीं सब कारणों से इसमें चैतन्य का प्रभाव विस्तृत नहीं हो पा रहा है-

---

1 लोकायतन-पृ0 217 सुमित्रानन्दन पंत

जन भू दुःख, दारिद्र्य तमिस्रा आकुल
अपनी आस्था अस्मिता अविद्या शासित ।
मन राग द्वेष तन रोग शोक से मर्दित
हो सुजन प्राण नर सर्व मैत्र हित अर्पित ।।[1]

× × ×

वसुधा दुवार देहरी कुल गोत्रों में बंटकर
भू बनी न स्वर्ग रही बस तामस खंडहर
सृष्टों की निर्मित सीमाओं के भीतर
बंट सकी न सुर संपद सामान्य धरोहर ।।[2]

कवि यह मानता है कि मानव यदि सुकार्यों में प्रवृत्त हो तो यह संसार अक्षय सुखों और आनन्द का हेतु है क्योंकि इस संसार के अलावा ईश्वर मूर्त रूप में कहीं परिलक्षित नहीं हो सकता'

ईश्वर की प्रतिमा अन्य कहीं क्या संभव ?
जन धरणी के अतिरिक्त मूर्त चिद वैभव
दर्शित ईश्वर भव युग युग में हो विकसित
प्रभु को करता अभिव्यक्त हृदय में जो स्थित ।[3]

कवि यह मानता है कि यह धरा ही स्वर्ग का उपक्रम है । यदि धरा न होती तो स्वर्ग का महत्व ही क्या था ? जीव को विकास का अवसर

1- लोकायतन पृ0 221- सुमित्रानन्दन पंत
2- वही
3- वही पृ0 226

भी इस धरित्री के कारण ही है-

> भगवत सुख का आनंद विमुख कर मन को
> भव संघर्षण से विरत बनाता जन को
> तथा अपूर्ण सुख स्वप्न जगत, जीवन भ्रम
> यह धरा नरक ही सृजन स्वर्ग का उपक्रम ।[1]

पंत जी का विचार है कि यह जगत सामूहिक जीवन का एक विराट यज्ञ स्थल है जहाँ कर्म फल की समिधाएँ अर्पित करके बंधनों से विमुक्ति प्राप्त होती है । कवि यह मानता है कि यह जगत सत्य है । अपने इस विचार की पुष्टि में वह कहता है कि यदि ब्रह्म सत्य तो उसका अंश रूप जगत असत्य कैसे हो सकता है ? फिर मिथ्या जगत के द्वारा सत्य रूप ब्रह्म से मिलना किस प्रकार संभव है ? अतएव यह जगत सत्य स्वरूप है-

> यह सामूहिक जीवन की ही यज्ञ स्थल
> बंधन विमुक्ति हो अर्पित कर्मों का फल
> तो सर्व भूतगत आत्मिक अनुभव उज्ज्वल
> चरितार्थ धरा पर हो जन जीवन मंगल ।
>
> यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य अशेष,
> मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय ।

1- लोकायतन- पृ0 230 सुमित्रानन्दन पंत

भव प्रगति शीलचित सत्य अंश ही का स्तर
प्रभु का सुख निश्चित देखेगा जग कर नर ।।[1]

इस प्रकार कवि ने जगत को सत्य तथ ईश्वर का ही अंश स्वीकार किया है तथा इसे परमतत्व की प्राप्ति का साधन माना है।

जानकी जीवन

श्री राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा ने इस महाकाव्य में जगत को परम प्रभु राम का लीलाधाम कहा है। यह संसार एक ऐसे नाट्य मंच की भांति है जहाँ पात्र ही दर्शक और सूत्रधार भी है। यहाँ अविराम लीला धाम की नित्य अभिराम लीलाएं हो रही हैं। यह खेल चिरकाल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलेगा। यह खेल शाश्वत है। इस दृष्टि में सूर्य और चन्द्र गेंद की भाँति हैं।

हो रही अभिराम लीलाएं सदा
लोक में अविराम लीला धाम की।

दृश्य दर्शक है स्वयं ही पात्र भी
मात्र नाटक नाट्य सूत्रधार भी -

यों चला चिरकाल से जो खेल है
आपको उसमें खिलाड़ी खेलता

1-लोकायतन पृ० 23। सुमित्रानन्दन पंत

सृष्टि के   से लगा के अंत में
आदि अन्त अनन्त क्रीड़ा का मिला
देखता थकता न ऐसा खेलना
जा रहा रहता न सोता है कभी ।

पक्षि थककर जाते सोते सदा
खेले पशु निज क्रीड़ाएं नयी
बालको भरती भूमि को टोलियां
पर सिर्फ लग्न है आखेट में ।[1]

कवि ने संसार में माया, मोह, लोभ व द्वेष आदि गुणों के विकास की तीव्र भर्त्सना की है तथा कहा है कि यह संसार ऐसा विचित्र है कि यहां किसी की बढ़ोत्तरी होती है तो दूसरा स्पर्धा से उससे जलने लगता है तीसरा इस घात में रहता है कि कैसे विघ्न उत्पन्न की जाय । ऐसी स्थिति में राग-द्वेष एवं माया-मोह से परिपूर्ण स्वार्थ पूर्ण संसार धिक्कारने योग्य है-

एक की अभिवृद्धि होती देख के
दूसरा फिर मलिन हो जाता जला
तीसरा अपना लगाये घात तो
यत्न शील चतुर्थ विघ्नोत्पात में ।

1- आ०को०पृ०185 राष्ट्रीय आत्मा.

अर्जुन को कृष्ण के द्वारा उपदेश दिलाते हुए कवि ने स्पष्ट किया है कि यह संसार नश्वर है । अतएव अनित्य शरीरों के प्रति मोह त्याग कर युद्ध करो । कृष्ण ने अर्जुन को संसार की संहरणशीलता का भी अच्छा परिचय दिया है -

जोचि अशोच्य कलेश तुम पावत
तेरो पै पंडितन प्रकटावत ।
मृत जीवतहु हेतु जन नाहीं
शोच करत पंडित जन नाहीं ।।

मैं तुम अरु समस्त ये नृपगण
रहे न भूतकाल अरु ना छिन ।

ऐसहु न सत्य कि भावती माहीं
रहि हैं बहुरि सकल हम नाहीं ।।[1]

× ×

विद्यमान कर नाहि अभावा
नहि अभाव कर संभव भावा
दोउन के र अंत पहिचानी
अस निर्णय तत्वज्ञानी
अविनाशी जेहि कीन्ह पसारा
कोउ न अव्यय नाशन हारा ।।[3]

1- कृष्णायन पृ0 304 श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र
2- वही 304
3- वही

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री द्वव रवा प्रसाद जी संसार को ईश्वर कृत तो मानते है परन्तु इसे नश्वर स्वीकार करते है । उनकी दृष्टि में यह संसार परिवर्तन शील है ।

विदेह -

विदेह महाकाव्य का कवि भी इस संसारको नश्वर स्वीकार करता है । कौ उसका का विचार है कि संसार के समस्त जीवधारी सागर की लहरों की भांति है लहरों का धर्म नश्वरता है जिससे स्पष्ट है कवि जगत को नश्वर मानता है । कवि यह मानता है कि यहाँ जन्म मरण का संगीत परिव्याप्त है । इस संगीत की लय और तान पर ही जगत रूप सागर की लहरें थिरका रही है-

मानवता
मानव का केवल
सौन्दर्य सत्य शिव मण्डप युक्त
मानवता यदि विभ्राव सिन्धु
मानव असंख्य लहरें उसकी
जो उठ उठ कर होती विलीन
जग के समस्त विस्तृत वक्ष पर
नित जन्म मरण संगीत लिए ।[1]

1- विदेह पृ0106 पोद्दार रामावतार अरुण

इस प्रकार स्पष्ट है कि सृष्टि के प्राणियों की लहरों से उपमा देकर कवि ने जगत की नश्वरता स्पष्ट की है ।

रामराज्य

बलदेव प्रसाद जी मिश्र ने इस महाकाव्य में संसार की आदि शक्ति द्वारा निर्मित बताया है तथा कहा है कि यह संसार अत्यन्त रहस्यात्मक है । कवि ने यह भी बताया है कि सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मानव नियति का एक खिलौना मात्र है-

बात सत्य है, मनुज नियति का
केवल एक खिलौना है ।
पर यह भी है सत्य कि वह
उसका ही प्यारा छौना है ।

आदि शक्ति है नियति उसी के
निगमों पर अटका संसार ।
उन्हें समझ उन पर चल पाना
उसके प्रिय सुत का अधिकार ।।[1]

कवि का विचार है कि आदि शक्ति ने ही सृष्टि रचना के उपरान्त मानव को सोचने समझने की शक्ति प्रदान की है । मानव की इस विशिष्ट क्षमता से ही सृष्टि में कर्मवाद और भाग्यवाद आदि चल रहे हैं-

----

1- रामराज्य पृ0 19 श्री बलदेव प्रसाद मिश्र

दयामयी माँ ने विवेक से
निज सुत को सम्पन्न किया ।
भूत भविष्य सोच लेने की
शक्ति और सद्ज्ञान दिया ।
जिसके बल से कर्मवाद के
ऐसे नियम निकलते हैं ।
भाग्यवाद के नियमों को जो
स्वयं कुचलते चलते हैं ।

इसी महाकाव्य में अन्यत्र कवि ने बताया है कि संसार की प्रत्येक वस्तु परमात्मा का अंश है । सर्वशक्तिमान द्वारा ही यह संसार निर्मित है-

विश्व के प्रति विश्व है उस पूर्ण का ही अंश
अंश सीमित ज्योति केवल मात्र भव का दंश ।।[1]

अरुण रामायण

अरुण रामायण का कवि भी अन्य महाकाव्यकारों की भाँति जगत को नश्वर मानता है । बालि की पत्नी को समझाते समय राम उसे जगत की नश्वरता बताते हैं । वे कहते हैं कि इस संसार में सब कुछ नाशवान है । यहाँ खिलने वाली हर कली मुरझाई है । जीवन और मृत्यु को मात्र सागर की तरंगों की भाँति समझना चाहिए । जिस प्रकार बादल सागर के जल से बन कर उठते हैं और पुनः जल होकर बरस जाते हैं वही स्थिति संसार में जन्म मरण की है -

---

1- रामराज्य पृ0 7 बलदेव प्रसाद मिश्र

अविनश्वर आत्मा के अधीन है जन्म मरण
किसके प्राणों पर पड़ा नहीं है काल चरण ?
मुरझा जाती है मृदु अमल है सुन्दरता
मिट जाती है ऐश्वर्यशालिनी नश्वरता ।

कल जो कलियाँ हँसती थीं आज नहीं हँसतीं
जीवन के मधुमास में मृत्यु किरण बसती
सागर तरंग सा जन्म-मरण उठता गिरता
घर-घर कर बादल-दल फिर अम्बर में घिरता ।।[1]

शत्रुघ्न और भरत के चरित्र और उनके राम के प्रति प्रेम की पूर्ण [?] वाक्यों के माध्यम से अति कातर और विह्वल वाणी द्वारा कवि ने काल की नश्वरता के साथ माया जन्य मोहादि का वर्णन भी कवि ने सुन्दर ढंग से किया है-

हे राम विश्व में ऐसा भी क्यों होता है ?
भीतर ही भीतर मन फूट फूट कर रोता है ।
शिशु सा बिलखाने लगे भरत अब रो रोकर
[?] दशा जैसे पन्नग निज मणि खोकर ।

उधर शत्रुघ्न अन्तःशोषित जानी चिंतित
भ्राता विछोह से भरत हृदय कम्पित विचलित
हे राम विश्व में ऐसा भी क्या होता है ?
मन ही मन शोकाकुल कोमल मन रोता ।[2]

1- अक्षय रामायण पृ0 414-415 रामाधार शर्मा
2- वही 243

इस प्रकार से महाकवि अज्ञ ने भी नश्वरता को जगत का प्रमुख विशेषता माना है ।

भगवान राम-

मनबोधन लाल जी कृत इस महाकाव्य में भी जगत को नश्वर माना गया है । कवि ने जगत को सुकृतियों तथा दुष्कृतियों का केन्द्र स्थल माना है । कवि का विचार है कि दुष्कृतियों से मानव नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है तथा सुकृतियों से उसे असीम उत्थान प्राप्त होता है । जगत के संदर्भ में कवि के विचार द्रष्टव्य हैं-

जगत निंदित निर्मम घातकी
जन प्रमोहक क्रूर उपद्रवी ।

विभव पाकर भी सब अन्ततः
कुकृति का अपनी फल भोगते ।

विटप की जब शीर्ण हुई जड़ें
पतन निश्चित है कुछ काल में ।

गरल मिश्रित खाकर अन्न क्या
बच सका नर जीवित है कभी ?

कुल किया जिसने कटु पाप का
फल अवश्य वही कटु भोगता ।।[1]

1- भगवान राम पृ0 322 श्री मनबोधन लाल

जगत को अधिकांश कवियों ने नश्वर ही माना है । इस सन्दर्भ में वे वेदान्त की भावनाओं के अधिक निकट प्रतीत होते हैं । हरिऔध, राजा राम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा' द्वारका प्रसाद मिश्र, बल्देव प्रसाद मिश्र व रामावतार अरुण के महाकाव्यों में जगत को नाशवान तो बताया गया है किन्तु कर्म पर विशेष बल दिया गया है तथा इसकी रचना में परमात्मा का विशेष योगदान स्वीकार किया गया है ।

जगत को अधिकांश कवियों ने नश्वर ही माना है । इस सन्दर्भ में वे वेदान्त की भावनाओं के अधिक निकट प्रतीत होते हैं । हरिऔध, राधा राम शुक्ल, राष्ट्रीय आत्मा' द्वारका प्रसाद मिश्र, बल्देव प्रसाद मिश्र व रामावतार अरुण के महाकाव्यों में जगत को नाशवान तो बताया गया है किन्तु कर्म पर विशेष बल दिया गया है तथा इसकी रचना में परमात्मा का विशेष योगदान स्वीकार किया गया है ।

षष्ठ अध्याय

आलोच्य काव्य में माया का (स्वरूप)

माया को दार्शनिकों ने सृष्टि का निर्माण करने वाली परमात्मा की शक्ति माना है । यह 'नहीं' में 'हाँ' की प्रतीति कराने वाली है । इसके कारण ही विस्तार जगत में प्राणी सार को मिथ्या अनुभव करता करता है और विविध प्रपंचों में फँसकर आनन्द रूप परमात्मा से च्युत रहता हुआ नाना प्रकार के भोगों में सुख का अनुभव करता है तथा जन्म जन्मान्तर क्रम में बँधा रह कर अनन्त दुःख का भागी बना है । माया के प्रभाव के कारण ही जीव वेदना में भी सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार माया प्रभु की एक विशिष्ट शक्ति है तथा संसार के विकास व हास विकास, सृजन और अन्याय कलाकृतियों में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है ।

प्रिय प्रवास-

प्रिय प्रवास में माया के रूप पर प्रकाश नहीं डाला गया है । यह अवश्य है कि कवि ने अविद्या ग्रस्त जीवों का वर्णन करके माया के प्रभाव

की व्यक्ति करने के प्रयास में उल्लेख नीय सफलता अवश्य प्राप्त की है । जीव ब्रह्म के अनुग्रह से पोषित होता है अतएव वह माया से भय नहीं रखता । कवि ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए गोप गोपिकाओं को जीवात्मा रूप में तथा कृष्ण को परमात्मा रूप में देखा है किन्तु कंस व उससे संबंधित अन्य जीव या असुर आदि माया कि प्रेरणा मात्र ही है । कवि जगत को मिथ्या या असत्य नहीं मानता है । माया की ठोस आवश्यकता न पड़ने का यह भी एक कारण रहा है । कवि ने इस सम्पूर्ण जगत को प्रभु का ही रूप स्वीकार किया है-

> विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो है उसी के ।
> सारे प्राणी सरिगिरिलता वेलियाँ वृक्ष नाना ।
> रक्षा पूजा उचित उनकी यत्न सम्मान सेवा
> भावोपेता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है ।।[1]

संसार में बन्धन का एक मात्र कारण अविद्याग्रस्त मोह है कवि ने इसका वर्णन करते हुए कहा है कि मोह ही सारे अनर्थों की जड़ है । मोह ही जीव को नाना प्रकार के स्वार्थों और सुखात्मक वासनाओं में लीन कर देता है-

> नाना स्वार्थों सरस सुख की वासना-मध्य डूबा ।
> आवेगों से बलित ममतावान है मोह होता ।।
> निष्कामी है प्रणय-शुचिता मूर्ति है सात्विकी है ।
> होती सच्ची प्रमिति उसमें आत्म-उत्सर्ग की है ।[2]

1- प्रिय प्रवास 16/117

2- वही 16/63

इस प्रकार कवि ने महाकाव्य मे माया का विशेष वर्णन न करके अविद्याग्रस्त जीवों और अविद्या के प्रभाव का वर्णन किया है ।

साकेत

विशिष्टाद्वैत मे माया के दो रूप माने गये है । अविद्या तथा विद्या अविद्या नाम की माया से आत्मा और परमात्मा अथवा जीव और ब्रह्म के बीच भेद उत्पन्न होता है तथा विद्या नाम के माया से जीवात्मा अन्य समस्त जीवात्माओं को भी ब्रह्मवत समझा करता है । गोस्वामी तुलसीदास की ही भांति गुप्त जी ने भी साकेत मे उक्त दोनों ही प्रकार की मायाओं का वर्णन किया है । डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों मे -'

'साकेत मे एक ओर तो अविद्या नाम की माया का वर्णन मिलता है, क्योंकि कवि ने जीव और प्रभु के मध्य मे भेद उत्पन्न करने वाली माया है जिसे दुरत्यया अर्थात अत्यन्त कठिनाई से अतिक्रमण या उल्लंघन कीजाने वाली कहा है और जिसे बड़ी ही शक्तिशालिनी बताया है । इसी लिए 'साकेत' मे इस अविद्या रूप माया का वर्णन करते हुए लक्ष्मण गुहराज को समझा रहे है कि इसे युक्तियों से वश मे करने का प्रयत्न करो तभी तुम्हारे जीवन मे भक्ति और मुक्ति का समन्वय हो सकेगा और तुम राम के सच्चे भक्त हो जाओगे । यथा -

जीव और प्रभु-मध्य खड़ी माया गाढ़ी
वह दुरत्यया और शक्तिशालि बड़ी ।
साधो उसको और मनाओ युक्ति से
सेओ, समन्वय करो भक्ति मुक्ति से ।।

इसके अतिरिक्त साकेत में दूसरी विद्या नाम की माया का भी उल्लेख मिलता है जिसे कवि ने ईश्वर की अनन्य भक्ति बताया है । इसलिए वह प्रथम सर्ग में राम लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को ब्रह्म की चार मूर्तियाँ बताया है और सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति को ब्रह्म की शक्ति स्वरूपिणी चार माया मूर्तियाँ कहता है-

ब्रह्म की है चार जैसी स्फूर्तियाँ
ठीक वैसी चार माया-मूर्तियाँ ।

इतना ही नहीं आगे चलकर पुनः कवि ने राम को प्रणयप्राण एवं कान्तकाया सीता जी को मूर्तिमती माया कहा है-

उन सीता को निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयप्राण को और कान्तकाया को ।

विद्या रूपी माया की साकार प्रतिमा सीता जी राम की अनन्य शक्ति है इसी से वे राम के अंतर्गत घनश्याम के भीतर विद्यमान बिजली की आभा के समान सदैव विद्यमान रहती है-

बैठी है सीता सदा राम के भीतर
जैसे विद्युति घनश्याम के भीतर ।।[1]

राम को इसी कारण से मायामय या मायापति कहा जाता है और जीव सीता या माया की कृपा से ही भगवद्भक्ति में लीन होता है । केवट राज द्वारा सीता जी से उतराई के रूप में स्वर्ण मुद्रिका न लेने

1- साकेत में भक्ति और दर्शन पृ0 370-71, डा0द्वारिका प्रसाद सक्सेना

और भवसागर पार कराने वाली कृपा का आग्रह करने का भी यही रहस्य है गुप्त जी ने लिखा भी है-

मिलन स्मृति सी रहे यह छादिका
सीता देने लगी स्वर्ण-मणि-मुद्रिका ।
गुह बोला कर जोड़ कि यह कैसी कृपा ?
न हो दास पर देवि, कभी ऐसी कृपा ?[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि साकेत मे कवि ने माया के अविद्या और विद्या दोनों ही रूपों का निरूपण किया है । उनकी दृष्टि मे विद्या के माध्यम से प्रभु की कृपा प्राप्त हो सकती है जबकि अविद्या भ्रम एवं मिथ्यात्व के घेरे मे डालने का उपक्रम करती है ।

विरहिणी

माया का कार्य नहीं मे हाँ की प्रतीति कराना है अर्थात मिथ्यात्व मे सत्यात्व का आभास कराने का कार्य माया द्वारा सम्पन्न होता है । कवि ने माया के स्वरूप वर्णन मे प्रायः विभिन्न दर्शनों मे वर्णित रूप का उल्लेख किया है । यहाँ शैव दर्शन से प्रभावित पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं-

माया-मायावी प्रकृति-पुरुष का जोड़ा
पाता है प्रायः वियोग, योग मे थोड़ा ।।
समरसता करता भग्न काम का कोड़ा
जब शिव ने खोला हेतु शिवा को छोड़ा ।

1- साकेत पंचम सर्ग- मैथिलीशरण गुप्त.

तब प्रकृति शिवा-माया को पुत्रा प्रथमजा
उस से निकली वह महत्तत्व की विरजा ।

उससे ही महत्त से अहम् विघुष्टि अमरजा
तन्मात्रायें आगयी मनोहर स्वरजा ।।[1]

कवि ने माया को प्रकृति रूप में भी चित्रित किया है तथा यह माना है कि यह प्रभु की प्रेरणा से ही जगत का कारण है-

उस परम तत्व से सत्व सभी को मिलता-
उसके माध्यम में अमन सुमन बन खिलता ।

निकली है उससे जग की चारू चटिलता
वह प्रकृति अव्यय विकृति, विराट महिलता ।[2]

कवि ने यह माना है कि नर और नरोत्तम में भेद कराने वाली माया ही है । कवि ने माया को प्रकृति कहकर भी सम्बोधित किया है-

है दोनों संयुक्त-सखा कल्प कल्पान्तर से,
है भेद कराती प्रकृति नरोत्तम का नर से ।

छवि छटा दिखाकर गाकर मादक स्वरों में ।
कर लेती है आकृष्ट प्रकृति निज पाशों में ।[3]

1- विरहिणी, रचना वर्ष पृ0 58, पं0 मुन्शीराम शर्मा 'सोम'

2- वही पृ0 57

3- वही पृ0 31

कवि यह मानता है कि माया ही भ्रम उत्पन्न करने वाली शक्ति है उसकी वजह से ही यहाँ आन्तरिक कोष अप्रभावी तथा बाह्य कोष विशेष प्रभावी और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेती है। इसका प्रभाव यह होता है कि जीव नाना प्रकार के झंझटों में फंस जाता है। उसकी मोहनी मूर्ति प्रतिक्षण जीव और कल्पावे में रखाती है। वह प्रभु की थाती को भूल जाता है-

आन्तरिक कोष है शून्य चंचलता धूल यहाँ
दुःख-कष्ट, व्यथा-वंचित माया में भूल यहाँ।
मोहिनी मूर्ति माया की प्रतिपल भटकाती।
इसमें कैसा है विभव ? विभव तो प्रभु थाती ॥[1]

कवि यह मानता है कि माया की मैत्री से जीव का केवल ह्रास ही होता है तथा ज्ञान भक्ति और सत्कर्मों से उसकी विरति हो जाती है। अतएव माया विनाश की भूमि है, मलिनता युक्त है। उसमें अशुद्धि और अज्ञान का वास है-

माया की मैत्री सदा जीव का ह्रास करे,
वह ज्ञान भक्ति, सत्कर्म, सभी से त्रास करे।
वह तो विनाश की भूमि मलिनतामयी महा
उसमें अशुद्धि अज्ञान, ज्ञान का ध्यान रहा।[2]

1- विरहिणी आत्म पुरुष पृ0 31, वीम

2- वही

इस प्रकार विरक्तियों में माया को जहाँ जगत की सर्जना का हेतु माना गया है वहाँ इसके अवगुणों और जीव पर प्रभावों को भी वर्णित किया गया है ।

श्री रामचन्द्रोदय

इस ग्रन्थ के रचनाकार के अनुसार माया ईश्वर की प्रेरणा से इस जगत का निर्माण करती है । माया का अर्थ ही है मृषा या असत्य अतएव उसके द्वारा निर्मित समस्त जागतिक वस्तुएं भी झूठ तथा मिथ्या है । उनके अनुसार माया कृत देहादि झूठा झूठा है-

मायाकृत देहादि झूठा,
झूठा जगत व्यवहार ।
आपु प्रकाशित 'ज्योतिषी'
सबनि प्रकाशनि हार ।।[1]

ज्योतिषी जी यह मानते हैं कि संसार में भासित अनेक विभेदों का कारण एक मात्र माया ही है । माया के कारण ही प्राणी संसार की वस्तुओं में भेद करता है जबकि इस सब के मूल में अभेद है-

धन्य धन्य ते 'ज्योतिषी'
जे गर्वे यहि भाँति ।
माया व्यापक में करि
लेखा जाति अरु पाँति ।।[2]

1- रामचन्द्रोदय काव्य पृ0 241 श्री रामनाथ ज्योतिषी

2- वही पृ0243

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री रामनाथ ज्योतिषी इस संसार और संसार की समस्त वस्तुओं को माया द्वारा निर्मित मानते है । उनके अनुसार यह जगत मिथ्या है अतएव यहाँ जीव को सुकृत्य और सुकृत्य मन से कार्य करते हुए मोक्ष पद हेतु उपक्रम करना चाहिए । जो प्राणी इस प्रकार कार्य करता हुआ मोक्षपद गामी होता है वह ही इस माया कृत संसार में धन्य है ।

विदुषार्थ-

अनूप जी की इस रचना मे माया को जगत की कारण शक्ति के रूप मे माना गया है । कवि यह मानता है जो कुछ दृश्यगत है वह सब माया जन्य है । उदाहरण देकर वह बताता है कि आकाश मे इन्द्र धनुष को विविध रंग शुक को मंजुल हरित्व, हंस को धवलता कोकी को विचित्र रंग व अन्य अन्यान्य तत्वों और वस्तुओं को उनका सौम्य रंग रूप देने का कार्य माया द्वारा ही सम्पन्न होता है-

> माया ही वह इन्द्रचाप रचती आकाश के अंक मे ।
> देती है हरित्व मंजु शुक को धावल्य भी हंस को ।
> देकी रचती विचित्र रंग है होताकाी उत्तमा
> होती विन्दु पयोद मे गगन मे तारा-शशी अर्यमा ।।[1]

माया को कवि ने ब्रह्म की अमूर्त शक्ति का मूर्तिमान रूप बताते हुए उसे त्रैलोक्य संचारिणी नाम दिया है । कवि ने माया को अन्य अनेक नामों से भी अभिहित किया है-

---

1- विदुषार्थ पृ0 284 अनूप शर्मा

हे सुगीत-छागीत, दो छवि कहाँ तुम्हारी स्वच्छन्दो हिली,
देखो, ज्योतिष्मति-तार वाचस्पति के बैठे छिपे व्योम में,
क्या ही सुन्दर अद्वितीय छवि है अलमारण-वीणा। सखी
बैठो वादन-तत्परा, छवि सुधा है शारदा की तर्जनी ।।[1]

कवि यह मानता है कि माया असीम विस्तार वाली शक्ति है । यही कारण है कि वह नीलमणि, माणिक्य, रत्न, कानन, अनुपम छवि सौन्दर्य कांति, रूप, सौरभ, मधुरता, संगीत आदि सभी व्याप्त है-

माया, आकाश-मध्य नीलमणि सी, माणिक्य सी, रत्न सी
बैठी कानन में अनूप छवि सी, सौन्दर्य की कांति सी
आई होकर रूप सौरभ, मधुरता, संगीत, बाला, सुरा
रहता है वह विशुद्ध मन में जो गुप्त है बीज में ।।[2]

कवि ने बताया है कि माया परब्रह्म की सर्वत्र प्रवृत्त गतिमती सत्ता है । यह नित्य, अमोघ, सत्य, अपरा-विलासिनी तथा शाश्वत है । माया शान्ति स्वरूपिणी छवि मयी तथा कल्याण रूपी किसी भी है कवि के विचार से यह ब्रह्म के विकार के सार से सजी हुई सुदृश्य स्वरूपा तथा आदि व अन्त से हीन है-

है सर्वत्र प्रवृत्त जो गतिमती सत्ता परब्रह्म की
जो है नित्य, अमोघ, सत्य, अपरा, विलासिनी, शाश्वती
माया, शान्ति स्वरूपिणी, छविमयी, कल्याण-रूपी किसी
सुदृश्य। ब्रह्म-विकार-सार-सजा आद्यन्त से हीन है ।[3]

1- विद्यार्थी पृ0285 अनूप शर्मा
2- वही
3- वही

इस प्रकार इस महाकाव्य में भी अनूपशर्मा ने माया को पर ब्रह्म की सृष्टि रचना करक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है ।

कामायनी

प्रसाद वेदान्त की ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या की धारणा को नहीं मानते हैं अतएव माया अर्थात नहीं है जो या नहीं में हां की प्रतीत ऐसी स्थिति का उन्होंने उस रूप में वर्णन नहीं किया है जिस रूप में उपनिषद ग्रन्थों में है । कामायनी में इड़ा बुद्धि का प्रतीक है । वह मनु के मानस का एक रूप है तथा वही मायागत प्रभावों को उत्पन्न करने वाली है । माया मानव के लिए अनन्य कष्टों का कारण है । कामायनी मानव के लिए अति बौद्धिकता भी मानव की अधोस्थिति के लिए जिम्मेदार है । इड़ा वस्तुतः व्यवसायात्मिक का बुद्धि का रूप है । वह मनु को बुद्धि और विज्ञान के द्वारा सारस्वत प्रदेश का शासन करने को कहती है-

> हां तुम ही हो अपने सहाय ?
> जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसी नर शरण जाय,
> जितने विचार संस्कार रहे उनका दूसरा है उपाय ।¹
>
> x x x
>
> सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता,
> तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता,
> तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय ।

---

1. कामायनी-इड़ा सर्ग- प्रसाद

मनु इड़ा के प्रदेश में अपार कष्ट और संकट के साथ-साथ अपमान झेलने के बाद जब श्रद्धा से मिलते हैं तो अपनी त्रुटि स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि इड़ा माया रूप थी और वे उसे समझ नहीं पाये । इड़ा के साथ बीते दिनों के प्रति उनके मन में घोर पश्चाताप है-

किन्तु अधम मैं समझ न पाया,
उस मंगल की माया को,
और आज भी पकड़ रहा हूँ
हर्ष शोक की छाया को ।
मेरा सब कुछ क्रोध मोह के
उपादान से गठित हुआ,
ऐसा ही अनुभव होता है
किरनों ने अब तक न छुआ ।
शापित सा मैं जीवन का यह
ले कंकाल भटकता हूँ,
उसी खोखलेपन में जैसे,
कुछ खोजता अटकता हूँ ।
अंध-तमस है किन्तु प्रकृति का
उस कर्षण से खींच रहा ।
सब पर हाँ अपने पर भी मैं
झुँझलाता हूँ खीझ रहा ।[1]

1- कामायनी- निर्वेद सर्ग प्रसाद.

इड़ा द्वारा दण्डित किये जाने के उपरान्त एकाकी मनु के समीप अचानक भटकती हुयी जब श्रद्धा पहुंचती है तो उनका प्रथम वाक्य और विचार भी इड़ा के सानिध्य का अच्छा चित्र अंकित करते हैं-

जब पीकर कुछ स्वस्थ हुए से
लगे बहुत धीरे कहने,
ले चल इस छाया के बाहर,
मुझको दे न यहाँ रहने ।

मुक्त नील नभ के नीचे या
कहीं गुहा में रह लेंगे,
अरे झेलता ही आया हूँ
जो आवेगा सह लेंगे ।[1]

युद्ध में मनु के रक्त रंजित होने का यह दृश्य भी वस्तुतः कारण रूप में माया जन्य ही है-

क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले,
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले ।

किन्तु सुन रहा कौन । धधकती वेदी ज्वाला,
सामूहिक बलि का निकला था पंथ निराला ।

रक्तोन्माद मनु का न हाथ अब भी रुकता था,
प्रजा पक्ष का भी न किन्तु साहस झुकता था ।

1-कामायनी, निर्वेद सर्ग प्रसाद.

कहीं पड़ी चिंता खड़ी कहां आरस्वत रानी,
थे प्रतिशोध अधीर रक्त बहता बन पानी ।

धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिये पूंछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।

अंतरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं।

और गिरीं मनु पर, मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर,
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर ।।

संक्षेप में कामायनी में स्पष्ट रूप से माया का वर्णन नहीं मिलता है, केवल उसमें माया के संकेत मात्र प्राप्त होते हैं ।

पार्वती

कवि श्री भारती नन्दन ने इस काव्य में माया को शिव की ही विभूति माना है तथा यह स्वीकार किया है । शिव या परमात्मा की इच्छा से ही माया इस सृष्टि का निर्माण करती है । माया चेतन शक्ति का ही एक रूप है जो प्राणि जगत में आविष्ट होकर जगत का रूप धारण करती है । कवि यह मानता है कि प्रकृति के प्राण वायु का स्पर्श प्राप्त होता है तो उसका रोम रोम पुलकित हो जाता है-

---

1- कामायनी- ईर्ष्या सर्ग प्रसाद,

प्राण वायु के अमृत स्पर्श से रोम प्रकृति के पुलके,
जीवन के स्वर गूंज उठे बन राग रुचिर मुकुल के,
मूर्त हुई मानव अंगों में चिति की अद्भुत माया,
जो ने जीवन के स्वप्न में अपना वैभव पाया ।।[1]

कवि का विचार है कि सूक्ष्म तन्मात्राओं का स्थूल रूप यह शरीर माया द्वारा ही निर्मित हुआ है । मिथुन वृत्ति का जगत के निर्माण में विशेष योगदान है । जीवन की माया का विस्तार इस वृत्ति के कारण ही हुआ है-

जंगम जीवों के जीवन में जीवन गति बन आया
जड़ता ने गति स्पंदन में नूतन जीवन पाया ।
गन्ध- रूप, रस शब्द स्पर्श को ग्राहक मिला रसीला
गति औ स्पंदन में जीवन का मनोरम लीला ।।

हुई सचेष्ट प्रवृत्ति रूप में जड़ता फिर जीवन की
पतित हुई जीवन रक्षण में वृत्ति प्रयत्न ग्रहण की
मिथुन वृत्ति के मधुर मोह में जग काम ने पाया,
हुई सजग आकार सृजन में फिर जीवन की माया ।।[2]

माया को कवि ने मनमोहिनी रूप में भी चित्रित किया है तथा बताया है कि माया ने ही विभिन्न अप्सराओं का रूप धारण करके बड़े बड़े ऋषि मुनियों का तप भंग किया है-

---

1- पार्वती पृ0 10 भारती नन्दन,
2- वही पृ0 12

मानव के अभिजात छन्द की मनोमोहिनी माया
वन अप्सरियों ने मुनियों का कितना मोह मिटाया।
कितने दिन मस्त अप्सराओं ने शशि अर्पित करके
मोह मिटाकर प्राण ओज ले मरे निरन्तर नर के।[1]

कवि यह मानता है कि प्रभु की माया का कार्य क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। यह शिव की व्यापक शक्ति है वह है उसके द्वारा ही असुर तक पराजित हुए हैं-

असुरों के संग्राम जय में अद्भुत माया-बल है,
प्राकृत परम्परा, माया भी उसका आच्छादित बल है,
अपना ले कर प्राप्त सहज हो वर जय और अभय का
नित्य नया शासन रचती है भय का और अभय का।[2]

इस प्रकार कवि ने माया को प्रभु की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है तथा यह स्वीकार किया है कि यह विश्व की सर्जक शक्ति है। इसके द्वारा शिव ने जगत में चेतना का संचार किया है जिससे प्राणि जगत का विकास हुआ है।

माया द्वारा निर्मित होने के कारण कवि की दृष्टि में संसार की समस्त वस्तुएं नश्वर हैं जिसे हम विराट रूप की संज्ञा देते हैं वह सद्गुणों की ही पुंजीभूत रूप है जो कि माया द्वारा निर्मित है किन्तु उसमें मूलतत्व के रूप में परमात्मा का निवास है-

---

1- पार्वती-पृ०20 भारती नन्दन
2- वही पृ०24

क्या है वह पर्वत भूमि काय-
पत्थर, मुट्ठी भर-शिलाखण्ड
क्या है वह ज्वाला मुखी-पुंज
मुट्ठी भर ज्वाला कण प्रखर ।।[1]

इस प्रकार कवि ने अपने इस महाकाव्य में माया को संसार के निर्माण का हेतु स्वीकार किया है तथा यह माना है माया जन्य तमिस्रा के ही कारण मानव ममत्व और परत्व के फेर में पड़ा हुआ है ।

जय भारत

मैथिलीशरण गुप्त ने इस महाकाव्य में माया के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है । विशेष रूप से उसके अविद्यागत रूप से प्रभावित लोगों का तो उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण और सजीव ढंग से चित्रण किया है । दुर्योधन इस तरह के लोगों में विशेष महत्व पूर्ण है ।

कवि ने क्षण भंगुरता के कारण जग में भी माया को देखा तथा यह माना है कि इस क्षण भंगुरता और नश्वरता से मानव विरक्त नहीं हो पाता है । पाण्डवों के स्वर्गारोहण के प्रसंग में कवि ने स्पष्ट किया है कि पाण्डवों ने अपने शस्त्र विसर्जित कर दिए किन्तु वहीं कवि प्रश्न उठाता है-लेकिन मानव ने इन शस्त्रों को रसातल कब जाने दिया ? अर्थात मानव जो कि मोहादि में फंसा हुआ है वह संसार से कब मुक्त हुआ । वह स्वयं तो नश्वर है ही नश्वर वस्तुओं की प्राप्ति के लिए उसका संघर्ष भी जारी है । माया का यह प्रभाव बड़ा विचित्र है-

---

1-आवर्ता पृ0 154, केदारनाथ पाण्डेय

निस्सार समझ शास्त्रों को भी
कर चले विसर्जित वे जल में।
पर हाय मनुष्यों ने उनको
क्या जाने दिया रसातल में।[1]

माया की चकाचौंध मानव से अनेकानेक कुकृत्य कराती है। सैरन्ध्री के प्रसंग में कीचक की कामलोलुपता का चित्र खींचकर कवि ने माया को बड़ी ही प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है-

रहने दो यह ज्ञान-ध्यान ग्रन्थों की बातें,
फिर फिर आती नहीं सुयौवन की दिन-रातें।
करिये सुख से वही काम, जो हो मनमाना,
क्या होगा मरणोपरान्त, किसने यह जाना ?
जो भावी की आशा किये वर्तमान सुख छोड़ते।
वे मानो अपने आप ही निज हित से मुख मोड़ते।[2]

वस्तुतः, सैरन्ध्री नामक दासी के रूप में पांचाली से कीचक के ये वचन चार्वाक दर्शन से प्रभावित है जो कि जगत को माया द्वारा निर्मित न मानकर सत्य मानते हैं किन्तु वेदान्त इन सभी स्थितियों को माया प्रेरित मानता है।

1- जयभारत- पृ0 438 मैथिलीशरण गुप्त
2- वही पृ0 265

कवि ने इसी प्रकार से अन्यान्य स्थानों पर काम क्रोध मद लोभ मोह आदि माया के विकारों का विस्तार से वर्णन किया है । कौरव और पांडव के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य में कौरव पंच विकारों के वशीभूत रूप है जबकि पाण्डवों की स्थिति इससे भिन्न है । कवि ने स्पष्ट किया है कि जो व्यक्ति कौरवों की भांति पंच विकारों में फंस जाता है उसकी इस संसार में दुर्गति होती है और जो पाण्डवों की भांति माया से निर्लिप्त रहते हुए कार्य करता है वह संसार में तो महत्व पाता है अन्त में स्वर्गारोहण कर मोक्ष पद का अधिकारी भी होता है ।

अंधियारा-

अंधियारा के कवि ने माया को अंधकार और तामसी वृत्तियों के प्रतीक के रूप में देखा है । परम प्रभु की माया के पार जाना नितांत दुष्कर है । बड़े बड़े तपस्वी भी इसका पार नहीं प्राप्त कर सके हैं । कवि कहता है कि किसी प्रकार भी मद का तम कम नहीं होता है । यह प्रश्न चिंतन रूप से सम्मुख खड़ा है-

> तार नहीं, वीणा न बनी रे,
>
> चादरिया भव की न तनी रे ।
>
> यह भी एक निराली माया तप करता मैं हारा ।
>
> तपकर ही श्रम बना परिश्रम,
>
> पर न भेद का तिमिर हुआ कम,
>
> प्रश्न भेद का यह रे खड़ा है, अब क्या कौन विचारा ।[1]

1- अंधियारा पृ0 14-15 केदारनाथ पाण्डेय

यह संसार विविध आत्मक है । इसकी विविधता में अभेद स्थिति का ज्ञान ही दर्शन है किन्तु सांसारिक जीव ही नहीं वरन बड़े-बड़े तपस्वी और ज्ञानी भी माया जन्य भेदों के चक्कर से ऊपर नहीं उठ पाते हैं और अन्ततः ममत्व और परत्व के वशीभूत होकर नाना प्रकार के कष्ट सहते हैं । कवि ने इस स्थिति से उबरने के लिए मन को सम्बोधित करके कहा है कि तुम समाधि का दीपक जला कर इस भेद मूलक अंधकार को दूर करो-

मन ! समाधि का दीप जलाओ
बन ज्ञान ही समावर्तिका
संकल्पों की जले वर्तिका
तुम ज्ञान पथ के कण कण को
झूम झूम कर ज्योति जगाओ ।[1]

कवि का विचार है कि माया ही वह शक्ति है जिसकी चितवन से संसार की रचना होती है वही इस संसार की समस्त वस्तुओं में प्रकाश रंग और स्वाद भरती है । समस्त जीवधारियों में प्राण तत्व प्रवाहित करने के कार्य में भी माया की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है-

यही वह प्रेरक शक्ति उदार
कि जिसकी चितवन हो संसार
महोत्सव यही यही वह धूम
कि जिसकी दीप पंक्तियाँ झूम
सुलगाती जीवन का अंगार
जगाकर पुलकित प्राण-सितार
कि जिसकी परस सुरभि संसार
यही वह प्रेरक शक्ति उदार ।।[2]

1- अर्चना पृ0 15 केदारनाथ मिश्र प्रभात

कवि ने माया को ज्योति के सर्ग की रचना करने वाली मृत्तिका के मर्म की रागिनी तथा सृष्टि की नयनाभिराम परम्परा के निर्माण का हेतु भी स्वीकार किया है-

मृत्तिका के मर्म की यह रागिनी
बाँटती मधु ज्योति जिसका सार है
कौन जो दे सर्ग जिसमें इस ज्योति का
प्रार्थना है प्रीति है विश्वास है ।[1]

× × ×

कौन जो इसके दृगों की कोर में
काल के विस्तार का पट खोल दे ।
कौन इसकी वर्तिका को स्नेह दे
चेतना में भर भविष्य अमोल दे ।

सामने मेरे खड़ी जो मुग्ध सी
सृष्टि की नयनाभिराम परम्परा
श्रृंखला जो सामने निर्माण की
है प्रतिच्छाया उसी की यह धरा ।[2]

<u>लोकायतन में माया का स्वरूप</u>

माया को अविद्या भी कहा गया है । इस काव्य में दीप्ति-दीप्त माया का वर्णन करके अविद्या के स्वरूप का वर्णन किया गया है तथा कवि

1- ऋतंबरा- पृ0 42, केदारनाथ मिश्र, प्रभात
2- वही पृ0 43

ने यह माना है कि अविद्या के कारण ही संसारिक जीव कष्ट मय जीवन व्यतीत करते है । यदि अविद्या का विनाश हो जाय तो यह संसार एक सूत्र मे सुग्रथित होकर असीम विकास कर सकता है । कवि का विचार है कि इस जग को नवीन मनः संगठन चाहिए जिससे अविद्या तिरोहित हो और मानवता की बेल विकसित हो सके-

जिस जग मे जन को सुलभ न स्नेह समादर
पशु कृमि सी विवश जहाँ रेंगा करते नर,
कौन हो वहाँ मनुजता का संवर्धन ,
चाहिए धरा को मनः संगठन नूतन ।।[1]

अविद्यारत जनों का आह्वान करते उस कवि ने समस्त जीवात्माओं के लिए सत्य के सूर्य से साक्षात्कार का संदेश दिया है-

घन अंध तमस मे गिरते विद्या रत मन,
उससे घन तम मे जाते अविद्या रत जन ।
विद्या अविद्या लहकर युक्त मनुज मे पर,
अमरत्व प्राप्त जन को मृत्यु सागर तर ।।

1- लोकायतन, पृ0 228,
सुमित्रानन्दन पंत.

ओ सत्य सूर्य, किस रश्मि समूह हटाओ,
मुझको अपना कल्याण स्वरूप दिखाओ
आज मैं समुद्र व्याप्त एक जो भास्वर
मैं ही आदित्य पुरुष वह अन्य नहीं पर ।[1]

इस प्रकार कवि ने माया का उल्लेख इस काव्य में अविद्या के रूप किया है । तथा मानव को उसे हटाने तथा ज्ञान प्राप्त करने का संदेश दिया है ।

आनन्दी जीवन

माया के प्रभावित करने के ढंग अनेक हैं कहीं वह कंचन मृग बनती है तो कहीं आचरणों में आ बैठती है और जीव को अपने वशीभूत करके नाना प्रकार के तिक्त और कषाय वस्तुओं के आस्वादन हेतु परवश कर देती है । जीव उसके प्रभाव से कटु वस्तुओं को भी मधुर समझता है। यह विचित्र चमत्कार है । कवि ने मानव की माया जन्य क्षुद्रता का बहुत अच्छा चित्रण किया है-

एक की अभिवृद्धि होती देख के
दूसरा जिन दाहिन ही जाता जला
तोड़ता अपना ही बनाये भाव को

1-लोकायतन, पृ0 237 सुमित्रानन्दन पंत

यत्नशील चहुँ विश्वोत्पात मे ।

राग-द्वेष प्रपंच माया-मोह का
नाम ही यदि सत्यतः संसार है
तो सदा इस स्वार्थ के संसार को
कोटिशः शत कोटिशः धिक्कार है ।[1]

माया के प्रभाव से विरले ही बच पाते है कवि का विचार है कि बड़े बड़े देवता आदि भी राग द्वेष प्रपंच मे संलग्न रहते है । बड़े बड़े सद्गुणी और बलवन्त या श्रीमन्त भी दूषित वृत्तियों के चंगुल मे फंस जाते है।

निश्चय सद्गुण सम्पन्न होके देव भी
राग-द्वेष-प्रपंच मे संलग्न है ।
सद्गुणी-बलवन्त या श्रीमन्त भी
सब दूषित वृत्तियों से युक्त हैं ।[2]

सृष्टि के निर्माण मे ईश्वर की माया की महत्वपूर्ण भूमिका है । कवि यह मानता है कि ईश्वर ही माया के माध्यम से लोक मे विहार कर रहा है । राम की इस माया को कवि ने अभिराम लीला नाम दिया है -

राम की अभिराम लीलाएं सभी
हो रहीं अविराम व्याप्त सर्वदा ।
देखते उनको न कोई व्यक्ति है
पूर्ण वर्णन की न वागशक्ति है ।[3]

1- जानकी जीवन पृ0 185 - राष्ट्रीय आत्मा

2- वही

3- वही [illegible]

विख्यात आज यह बात समस्त विश्व में
साकेत की सुखद प्रभाव कारिणी प्रथा
कर्तव्य धर्म निरता विनयादि संकुला
आदेश से प्रभु के उपदेश के लिए ।[1]

इस प्रकार कवि ने माया को प्रभु की एक शक्ति माना है तथा यह बताया है इसके माध्यम से ही प्रभु सृष्टि में लीला करते हैं किन्तु राम कृपा के प्रभाव द्वारा इसके दुष्प्रभावों से परित्राण प्राप्त किया जा सकता है ।

<u>कृष्णायन</u>

माया के प्रभाव से पृथ्वी पर अंधकार रात्रि के समान है । माया की रात्रि में जागते हुए प्रतीत होने वाले लोग भी सो रहे हैं क्योंकि वे तत्व चिंतन द्वारा प्रतीत होने वाले ज्ञान से विरत तथा अज्ञान जन्य अंधकार में लिप्त हैं । कवि श्री द्वारका प्रसाद मिश्र ने माया के इस प्रभाव का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है-

सोवत जाहि राति सब प्रानी
जागत तहाँ संयमी ज्ञानी ।
संसृति यह समस्त जब जागति[2]
सोई राति संयमिहि लागति ।

1-जा0बो0 राष्ट्रीय आत्मा पृ0 128

2-कृष्णायन - पृ0 307 द्वारका प्रसाद मिश्र

कवि ने बताया है कि माया के प्रभाव के कारण ही इन्द्रियों पर वश हो जाता है और उन्हें नियन्त्रित रखना कठिन हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप बोध का विनाश हो जाता है। इस विनाश क्रम को कवि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है-

करत चिन्तवन विषय प्रसंगा ।
उपजत मनुजहि विषय संगा ।।
संग ते काम, काम ते क्रोधा ।
क्रोध भये उपजत संमोहा ।।
मोहहु स्मृति भ्रम उपजावा
स्मृति विभ्रम पुनि बुद्धि नशावा ।
अर्जुन नष्ट बुद्धि जेहि केरी
विनसत बोध न लागत देरी ।[1]

कवि यह मानता है कि माया के प्रभाव से ही जीवन मरण प्रभावित है। कृष्ण ने स्वयं जो कृष्ण का मानव शरीर ग्रहण किया उसमें भी माया का प्रभाव है। कृष्ण स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हैं-

यद्यपि मैं सब प्राणिन ईश्वर
आत्मा जन्म विहीन अनश्वर ।
तदपि प्रकृति निज मैं अपनायो
देह जन्म माया ते पायो ।[2]

1- कृष्णायन पृ० 308 द्वारिका प्रसाद
2- वही 311

माया के प्रभाव के कारण यह मन स्थिर नहीं रहता। विषयों में भ्रमण करता फिरता है किन्तु योगी जन माया के प्रभाव को काट कर उसे स्थिर करने में सफलता प्राप्त करते हैं-

अजहुं चंचल मन थिर नाहीं
भ्रमत जहाँ तहँ विषयन माहीं।
तहाँ तहाँ ते ताहि फिरायो
राखहिं योगी निज वश लायो ॥[1]

इस प्रकार द्वारका प्रसाद जी ने माया को संसार की दृष्टि से बहुत अधिक प्रभावपूर्ण व सघन माना है और इसकी पराकाष्ठा स्वयं प्रभु को माया के वशीभूत होकर देह धारण करने में दिखाई है।

<u>विदेह</u>

विदेह महाकाव्य में भी माया को संसार की रचना करने वाली शक्ति के रूप में देखा गया है। कवि यह मानता है कि माया नहीं है, हाँ को प्रतीत करने वाली है। कवि का यह भी विचार है कि माया हमें एक ऐसी कसौटी देती है जिसके द्वारा हम सत्य से साक्षात्कार कर पाते हैं। यदि माया रूप असत्य न होता तो हम सत्य की पहचान करने में सदा असमर्थ रहते। फिर भी कवि का संदेश है कि मिथ्यात्व का त्याग मानव के लिए परमावश्यक है। उसे तिमिर का अज्ञान समाप्त करके ज्ञान का आभास प्राप्त करना चाहिए-

---

1- कृष्णायन पृ0 311 द्वारका प्रसाद मिश्र

सप्त रंगों से विनिर्मित किरणमय
भाल पर शोभित प्रदीप्त किरीटिनी
हँस रही निस्सीम तम की गोद में
फिर बुला विधि मधुर माया मोहिनी ।।[1]

x x

कल्प-युग नववर्ष ऋतु दिन-मास से
पूछते हैं निस्सीम वे इतिहास को
गूँजते संगीत प्रतिक्षण व्योम में
एक गाथा विकास और विनाश के ।[1]

कवि ने माया के विस्तार को अगम और अथाह बताया है । वस्तुतः यह संसार सागर माया की उर्मियों से ही निर्मित है । इसमें ज्ञान राशि का तत्व आकाश से अधिक प्रतीत होता है -

तुम माया सिन्धु अगम अथाह हो
लहर दर्शन हो नयन को तृप्ति हो
ज्ञानराशि तुम अधिक आकाश से
प्यार भाषा में सुमन अनुरक्त हे ।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने माया को अति विस्तृत रूप में देखा है तथा संसार की रचना में ईश्वर की इस शक्ति का विशेष प्रभाव स्वीकार किया है ।

1- विदेह पृ0 279, प्रथम रामायण पोद्दार रामावतार अरुण
2- वही 285

रामराज्य

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी माया को जगत का कर्ता बताया है । कवि ने कहा है कि नियति ने इस संसार की रचना की है । इस आदि शक्ति के इंगितों पर ही यह संसार चक्र गतिमान है । कवि ने बताया है कि आदि शक्ति के इंगितों को समझ पाना दुष्कर और कठिन है । माया की इस दुष्करता और कठिनाई का वर्णन वेदों और उपनिषदों में भी है । कवि ने स्पष्ट किया है कि मानव का यह अधिकार है कि वह संसार की दुष्करता माया के रहस्यों पर विजय प्राप्त करे-

> बात सत्य है, मनुज नियति
> का केवल एक खिलौना है ।
> पर यह भी है सत्य कि वह
> उसका ही प्यारा छौना है ।
> आदिशक्ति है नियति उसी
> के निगमी परमात्मा ईश्वर
> उन्हें जान कर उन पर जय
> पाना उसके प्रिय सुत का अधिकार ।[1]

कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि वह माया के प्रभाव से जीव को मुक्त करे बाह्य और अन्तर के तिमिर को नष्ट करे ताकि प्रकाश प्राप्त होने

1- रामराज्य पृ० 19 श्री बलदेव प्रसाद मिश्र

पर तथा से अलग हुआ । उसे परमतत्व को प्राप्त किया था जैसे-

मन को ज्योतिर्मय करके प्रभु-
जग जन-मन में ज्योति भरो
तिमिरावरण बाह्य अन्तर के
विश्व विधाता दूर करो
बना सुकारी हो और जग में
सुख में मेरी शांति बसे ।
मेरी शांति जहां हो जिसमें
प्रभु करुणा की कांति बसे ।[1]

कवि ने माया जन्य भाव बन्धनों से मुक्ति पर विशेष बल दिया है । उनका विचार है कि ऐसी व्यवस्था बने जिसमें सुख सम्पन्न हो व्यक्ति जाए । उसमें शांत भाव का विकास हो । वे स्वयं तो मुक्ति को प्राप्त करें ही औरों को भी मुक्ति प्रदान करें । ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि अज्ञान की शिला हट जाय और ज्ञानामृत की धार फूट पड़े-

मुक्त हों, सज्जन, सज्जन शांत
शान्त हों भव बन्धन से मुक्त ।
मुक्त हो जो वे जागें और
करें औरों को भी उन्मुक्त ।

1- रामराज्य पृ0 21 श्री बलदेव प्रसाद मिश्र

यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय
न तब चलना उस स्वीकार
हटा दो शिक्षा कि जिससे उमड़
पड़े उर से ज्ञानामृत धार ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने माया को अज्ञान का कारण माना है तथा अज्ञान के विनाश के लिए मानव मे ज्ञान के प्रकाश के संचार पर विशेष बल दिया है।

अरुण रामायण-

अरुण रामायण मे रावण के वैभव के माध्यम से कवि ने माया के व्यापक प्रभाव को स्पष्ट किया है । इस दृष्टि से कंचन मृग का प्रयोग भी महत्वपूर्ण है । कवि ने राम सरीखे पुराने कथानक के अनुरूप कंचन मृग को माया का विशेष प्रतीक माना है तथा दिखाया है कि राम और सीता जैसे तत्व ज्ञानी भी माया मृग के फेर मे पड़ जाते हैं - सीता का विलाप इस भाव की पुष्टि करता है-

छलता है कंचन मृग मे तेरी माया री
झिलमिल झिलमिल तेरी सी स्वर्णिम काया री ।
मै भुगत रही हूँ अभी लोभ परिणाम आज
मेरे कारण हो दूर अभी घनश्याम आज ।

कंचन तू कितना चंचल है कितना चंचल
तेरी मादकता मे कितना है छल-बल-छल

1- रामराज्य पृ0 50 श्री बलदेव प्रसाद मिश्र

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने माया को सांसारिक दृष्टि से बड़ा प्रभावी माना है और यह स्वीकार किया है कि इसके पाश से कोई विरला ही कदाचित बच जाये ।

भगवान राम

इस महाकाव्य में भी माया का चित्रण माया मृग के माध्यम से अच्छे ढंग से किया गया है । माया मृग का पीछा करते ही राम अन्यान्य संकटों में फंस जाते हैं । माया मृग की प्राप्ति का यदि भाव भगवान के मन में न उठता तो वे कदाचित अन्याय संकटों से अपने को बचा सकते थे । किन्तु ऐसा न संभव हुआ । यह माया का ही प्रभाव है-

माया मृग ले गया राम को जब स्थान से दूर
पालन किया हुए आज्ञा का उसने भी भरपूर ।

वध कर उसे अविचित रघुवर लौटे आश्रम की ओर
संशय उद्वेलित मानस में उठने लगी हिलोर ।।

मन की शिला तल व्यथा पर भय का आरोप
बढ़ता जाता था सीता पर जैसे तामस कोप ।
पीछे से गोमायु घोष का उठा निनाद कठोर
आने लगी क्षिति वर्षा के घोर निमित्त कठोर ।।[1]

1- भगवान राम पृ० 37। श्री मदीपन राव

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राक सभी आधुनिक महाकाव्य कारों ने माया को मिथ्यात्व का कारण माना है तथा यह स्वीकार किया है कि जगत माया द्वारा निर्मित है । यहाँ माया पर विजय प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है । सद जीवात्माएं अपनी साधना द्वारा इस पुरुषार्थ की प्राप्ति करती हैं जबकि असद और निम्न कोटि की जीवात्माएं सांसारिकता में डूबी रहकर माया के इंगितों पर ही जन्ममरण के चक्र में नाचा करती हैं ।

सप्तम अध्याय

आलोच्य काव्यों में मोक्ष का स्वरूप

सप्तम अध्याय

आलोच्य काव्य में मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष को भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में अन्तिम पुरुषार्थ माना गया है। तीन अन्य पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ और काम ये तीनों ही पुरुषार्थ लौकिकता से संबंधित हैं किन्तु अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए योगी या भक्त आदि अनवरत प्रयास करते हैं। भिन्न भिन्न दर्शन ग्रन्थों में इसका स्वरूप विभिन्न प्रकार से बताया गया है। कुछ दर्शन मोक्ष का अर्थ परम पद की प्राप्ति मानते हैं जबकि अन्य कुछ दर्शन मृत्यु को मोक्ष स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार कुछ दार्शनिकों का मत है कि मोक्ष ज्ञान प्राप्ति की एक उच्चस्थिति का नाम है।

प्रिय प्रवास- कृष्ण भक्त कृष्ण के सान्निध्य में ही मोक्ष सुख प्राप्त करते रहे हैं। यह महाकाव्य भी कृष्ण के जीवन पर ही आधारित है अतएव इसमें भी मोक्ष का अलग से वर्णन तो नहीं है किन्तु कृष्ण के साथ गोपिकाओं के

रास का वर्णन अवश्य है जिसे भक्तों ने मोक्ष से भी अधिक महत्व दिया है । कृष्ण के मथुरा-गमन के बाद गोपिकाएँ स्मृति के रूप में उस रास को याद करती हैं और उद्धव के आगे मन की रास का महत्व और उपस्थिति बताते हुए उनके ज्ञान को तुच्छ बताती हैं । कवि रास का वर्णन करते हुए कहता है कि उस समय समस्त व्रज जन विमुग्ध हो गए थे । उन्हें अपनी अपनी स्थिति का ध्यान भूल गया था । वे ममत्व और परत्व से ऊपर उठकर कृष्ण की बाँसुरी की तान की एक एक लय में निमग्न हो गए थे-

क्रीड़ा-मयी ध्वनिमयी कल-ज्योतिवाली
धारा अनेक सरि की अति तद्गता थी ।
थी नाचती उमगती अनुरक्त होती
उल्लासिता विहसिता अति प्रफुल्लता थी ।।

पाई अपूर्व स्थिरता मृदुवायु ने थी ।
मानो अचंचल विमोहित हो बनी थी
वंशी मनोज्ञ स्वर से बहु मोहिता हो
माधुर्य साथ हँसती सित चंद्रिका थी ।।

उसके साथ नर-नारि-समूह गाता ।
उत्कंठ था न किसको महि में बनाता ।।

तानें उमंगित करी कल-कंठ वाला,
देवी रही कल-उदस्थल की बजाती ।।[1]

1- प्रिय प्रवास, 14/109 ।।

कृष्ण की बांसुरी की तान रास में प्रयुक्त अन्य समस्त वाद्य यंत्रों की अपेक्षा बड़ी ही निराली थी उसकी ध्वनि और लय से सरसता चरम बिन्दु तक विकास पाती थी और एक समय तो अन्य समस्त वाद्य यंत्रों तक विकास पाती था वादन रुक गया और केवल कृष्ण की वंशी की तान ही रास क्षेत्र में ध्वनित होती रही । रास की यह चरम परिणति थी । इस स्थिति में जीवात्मा रूप गोपिकाएं और गोप अपना सब कुछ भूल कर सर्वभावेन कृष्ण समर्पित हो गए, या यों कहें सायुज्य मुक्ति का अनुभव उन्हें प्राप्त हुआ-

हीरा समान बहु स्वर्ण- विभूषणों में ।
नाना विहंग रव में पिक-काकली सी ।
होती नहीं मिलित थी अति थी निराली ।
नाना- सुवाद्य स्वन में हरि -वेणु तानें ।

ज्यों ज्यों अधिकता कल-वादिता की
ज्यों ज्यों रही सरसता अभिवृद्धि पाती ।
त्यों त्यों कला विवशता सुविमुग्धता की
होती गयी अधिकता उर में सबों के ।।

गोपी समेत आप्त समस्त ग्वाले ।
भूले स्वगात-सुधि हो सुरती रसार्द्र
गाना रुका सकल -वाद्य रुके रु-वीणा
वंशी विचित्र,स्वर केवल गूंजता था ।

होती प्रतीति उर में सब बाल यों की ।
है मंत्र साधा मुरली अभिमंत्रिता हो ।
उन्माद -मोहन- वशीकरणादिकों से
है मंजु-धाम उसके मधु रंध्र सारे ।।

पुत्र प्रिया-सहित मंजुल राग गा-गा ।
सान्द्र स्वरूप उनका जन-नेत्र लागे ।
ऐसे अनेक उपदेशक-बाकताने
को श्याम ने परम-सुन्दकरी क्रियाएं ।[1]

साकेत-

विशिष्टाद्वैत मत में ईश्वर के अनुग्रह से मोक्ष प्राप्ति होने की बात कही गयी है । वे यह मानते हैं कि जीव और ब्रह्म में जब ऐक्य स्थापित हो जाता है तभी जीव को मोक्ष प्राप्ति होती है । मुक्तावस्था में जीव ब्रह्म का अभेद स्थापित हो जाता है । रामानुज के अनुसार जीवन्मुक्ति नहीं होती केवल विदेह मुक्ति ही होती है । उनकी दृष्टि से बैकुण्ठ में भगवान का दास बन कर प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करना ही परममुक्ति है । साकेत में मोक्ष का यही स्वरूप देखने को मिलता है ।

साकेत कार की एक विशेषता यह भी है कि मुक्ति के लिए वैराग्य को महत्व नहीं देते हैं । वैष्णव भक्ति परम्परा के सिद्धान्तों का पालन करते हुए वे गृहस्थ धर्म के पालन में साथ भक्ति करने की सलाह देते हैं । वे भोग भक्ति का समन्वय स्थापित करते हुए लक्ष्मण के मुख से निषाद राज को उपदेश दिलवाते हैं कि तुम्हें राम के लिए अपना शृंगवेरपुर का राज त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं है, वे तो प्रीति मात्र से ही परितुष्ट हैं । तुम यहीं रहो और उस माया की साधना करो जो जीव और प्रभु के

1- प्रिय प्रवास, चतुर्थ सर्ग 113-117.

जीव में अड़ी है तथा । बड़ी ही दुरत्या और शक्ति शालिनी है । इसे युक्तियों से मनाओ और भगवत्प्रेम से पूर्ण भक्ति का युक्ति से अन्वय करो-

शृंगबेरपुर राज्य करो तुम नीति से
आर्य तुष्ट हैं मात्र तुम्हारी प्रीति से ।

× × ×

जीव और प्रभु मध्य अड़ी माया खड़ी
वह दुरत्या और शक्तिशालिनी बड़ी
साधो उसको और मनाओ युक्ति से
सखा, अन्वय करो भक्ति का युक्ति से ।[1]

मोक्ष के संदर्भ में कवि ने आत्मा के साक्षात्कार करने एवं सर्वत्र एक ही आत्मा का प्रसार देखने की प्रेरणा भी प्रदान की है । इसी कारण गुप्त जी ने साकेत वासियों को एक ही वृक्ष पर विकसित होने वाले विविध पुष्पों के रूप में अंकित किया है-

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले ।[2]

साकेत के राम स्वयं ही बहुत अनुग्रहशील हैं तथा वे लोक कल्याण की भावना ही अपने अवतरण का उद्देश्य बताते हैं । वे सांसारिक कष्टों को उठाने के बावजूद अपना लक्ष्य जन जन को मुक्ति का प्रदान करना ही मानते है । उनकी दृष्टि लोक सापेक्ष है-

---

1- साकेत पंचम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त
2- वही प्रथम सर्ग .

मैं यहाँ जोड़ने नहीं बाँटने आया,
जगदुपवन के झंखाड़ छाँटने आया ।
मैं राज्य भोगने नहीं, भुगाने आया,
हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया ।[1]

साकेत की एक विशेषता यह भी है कि इसमें वर्णित दार्शनिक विचार मोक्ष को लक्ष्य करके नहीं प्रस्तुत हुए हैं । कवि प्रवृत्ति मार्गी होने के बाद भी इस रचना में निवृत्ति मार्ग में लीन प्रतीत होता है । साकेत के राम का प्रत्येक कार्य निष्काम भाव से पूर्ण है तथा प्रत्येक साधक को उनका जीवन निष्काम भावना का ही संदेश देता है-

अपनों के ही नहीं, परों के प्रति भी धार्मिक,
पूरी प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग मर्यादा मार्मिक ।
राजा होकर मुनि मुनि होकर संन्यासी,
प्रकट हुए आदर्श रूप घट घट के वासी ।।[2]

विरहिणी

पं० मुरारीराम शर्मा सोम की विरहिणी में आत्मा का परमात्मा से मिलन ही मोक्ष है । कवि ने चिर विरह के उपरान्त आत्मा का परमात्मा से संयोग प्रदर्शित करके असीम आनन्द के क्षणों को काव्य बद्ध किया है प्रभु की यह कृपा प्राप्त हो जाने पर जीवात्मा अनुभव करती है कि उसे असीम करुणा का एक कण प्राप्त हो गया है । उसके समस्त कष्ट कट गए हैं

1-साकेत अष्टम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

2-वही द्वादश सर्ग

और सुखद प्रकाश के दर्शन हुए हैं । प्रभु कृपा की इस अनन्त वृष्टि में जीवात्मा को ज्ञान आत्मिक पैद पद व अक्षत सौख्य पद प्राप्त हो गया है-

तुम्हारी करुणा का कण एक ।
आज मिला है मुझे भाग्य से भारी कष्ट अनेक ।
उस प्रकाश मय मुक्त स्वर्ग से आरिक्षा में आया,
पल का बिन्दु खोला मेरे लिए अनन्त ध्यान लाया ।
उसकी सरस, सुन्दर वर्षा में मैंने सब कुछ पाया,
ज्ञान,आत्म बल,पैद पद पद अक्षत सौख्य मन भाया
नाथ तुम्हारे स्वरूप मुझ से जन्म जन्म की प्यास बुझी ।
मैं सनाथ हो गई, तृप्ति को अब न रही आशा उसकी ।।

मिलन जन्य मोक्ष की इस स्थिति में जीवात्मा यह अनुभव करती है कि उसका जीवन कृतकृत्य हो गया है । उसे सत चित आनन्द युक्त उन्मुक्त ज्ञान प्रकाश के दर्शन होते हैं-

आज है कृत कृत्य मेरा प्रेम मेरा स्नेह
सामने है दिव्य प्रेमास्पद, मिला मधु गेह ।

प्रेम का प्रस्तुत प्रयोजन, प्रेम भाजन पात्र,
आज यह परिरम्भ व्यापन आज यह सहवास ।।

आज सत है, आज चित है , आज है आनन्द,
आज है उन्मुक्त ज्ञान-प्रकाश-रवि स्वच्छन्द ।

1- विरहिणी आत्मगीत पृ0 250-51, आ0 सीम

आज मेरा मग्न तुझमें, मैं स्वजन में बन्द,
आज के कष्ट कहाँ है ? आज है सब बंद ।

अब गुणा में है गुणा-बहुगुणा गुणा में लीन
आज सब भी मौन भय है और सब भयहीन ।।[1]

ज्ञान की अवस्था को ही मोक्ष की स्थिति माना गया है । कवि भी कहता है कि जीवात्मा ने ज्ञान के अमृत का पान कर लिया और उसे इस प्रकार दिव्यता प्राप्त हो गयी है । उसकी मरण शीलता अब समाप्त है । अब वह अमर है और अमर गुणों के खान है । उसकी व्याकुलता व्यतीत हो गयी है । और जीवन की ग्राम गति सरलता में परिवर्तित हो गयी है-

पिया है ज्ञानामृत का पान,
पाया पुण्य-प्रकाश-प्रभाकर, मिला दिव्यता दान ।
अब रिपु-पाप करे क्या मेरा ? मैं परितृप्त अकाम ।।
मर्त्य मूर्ति की मरणशीलता यहाँ न पाये धाम
अमर देव । मुझको भी तुमने किया अमर-गुण-ग्राम ।
व्याकुलता बीती रीती है जीवन की गति वाम ।
आज भटकता होगा विभ्रम मेरे पास विराम ।
रही न चंचलता की हलचल अब जीवन विश्राम[2] ।।

मोक्ष की स्थिति में अपनी अमरता का ज्ञान पाकर जीवात्मा भाव विभोर हो जाती है । कवि ने इस स्थिति का चित्रण भी बहुत सुन्दर ढंग से किया है-

---

1- विरहिणी आत्मा पृ0 249 डा0 सोम
2- वही 251

मैं अमर, आज मैं अजर अमर
मर गये प्रकृति के द्वन्द्व सकल कर मुझे अविजित विजित अमर[1]

श्री रामचन्द्रोदय

मोक्ष को ज्ञान का ही रूप माना गया है । श्रीरामनाथ जी ज्योतिषी भी मोक्ष के लिए ज्ञान पर विशेष बल देते हैं । वे यह कहते हैं कि जो प्राणी इस जगत को ब्रह्म मय देखते हैं वे कभी भी इस संसार रूपी कूप में नहीं पड़ते अर्थात मोक्ष पद की प्राप्ति करते हैं-

बिना ज्ञान के मुक्ति नहिं,
आत्मा ज्ञान स्वरूप ।
जगत ब्रह्ममय देखा जो
ते न परे भव कूप ।।[2]

वेद पुराणों को उद्धृत करते हुए भी ज्योतिषी जी ने मोक्ष के लिए ज्ञान को विशेष महत्व दिया है-

बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं,
भाषत वेद पुरान ।
अयुत अयुत गौएं दिये,
पंच धेनु का दान ।।[3]

1- विरहिणी पृ0 252 आ0 सोम
2- श्रीरामचन्द्रोदय काव्य पृ0 240 श्रीरामनाथ ज्योतिषी
3- वही पृ0 258

पुरुषार्थ चतुष्टय की पुष्टि करते हुए श्री ज्योतिषी ने भी मोक्ष को चतुर्थ पुरुषार्थ को स्वीकार किया है-

> ये ज्योतिषी मैन ये,
> तेहि गृहस्थ के धाम ।
> अर्थ धर्म कामादि युत,
> अरु मोक्ष अभिराम ।।[1]

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रोदय में मोक्ष को चतुर्थ पुरुषार्थ स्वीकार करते हुए उसे ज्ञान का फल बताया गया है ।

<u>सिद्धार्थ</u>

बौद्ध दर्शन में मोक्ष को निर्वाण नाम दिया गया है तथा जीवन मुक्त स्थिति पर विशेष बल है । यह महाकाव्य बौद्ध दर्शन पर ही आधारित है । अतएव इसमें भी इस संदर्भ में निर्वाण तथा जीवन मुक्त स्थिति का वर्णन मिलता है ।

कवि का यह विचार है कि जो व्यक्ति सत्कर्म में प्रवृत्त होकर संसार के सुख दुःखादि को सहता है और उस स्थिति के बीच से कल्याण के मार्ग को खोज में प्रवृत्त होता है वह व्यक्ति गंभीर विनम्र न्याययुक्त औदार्यपूर्ण तथा जीवन वासना रहित होते हुए जीवन मुक्त स्थिति प्राप्त करता है-

> जो सत्कर्म परा प्रवृत्ति रहा के संसार को सेता
> सारे सुख दुःख भोगकर जो कल्याण को खोजता
> जो गंभीर विनम्र न्याययुक्त हो औदार्य से पूर्ण हो
> प्राणी जीवन वासना-रहित हो होता वही मुक्त है ।[2]

1-श्री रामचन्द्रोदय-पृ0239, रामनाथ ज्योतिषी

इस प्रकार कवि ने जीवन मुक्त स्थिति के संबंध में वे ही विचार व्यक्त किये हैं जो निष्काम कर्मयोग के अन्तर्गत गीता में भगवान कृष्ण ने व्यक्त किये हैं।

कवि ने सिद्धार्थ में कृष्ण के निर्वाण का चित्र खींचा कर निर्वाण पद के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं-

इस प्रकार तथागत प्रेम से
सुमधुर उत्तर देकर विप्र को,
मनसि इन्द्रिय ज्ञान समेट के
मन किया लय अम्बर प्राण में।

कर स्व प्राण निर्विकल्पक बोध में
निजय बोध किया चिर सत्य में
उदधि-वायु-समान उछाल में
प्रभु सदेह तिरोहित हो चले।[1]

कृष्ण के तिरोहित होने के समय का चित्र भी इस संदर्भ में विशेष रूप से द्रष्टव्य है-

इस महामय वारक काल में
प्रभु निर्भय कृष्ण अभीत थे
चमकती उनके मुख पे तभी
आत्मिक प्रस्फुटित भावना।

1- सिद्धार्थ पृ0 292 अनूप शर्मा

बुद्ध के उस तिरोहित होते रूप के वर्णन से स्पष्ट होता है कि निर्वाण प्राप्त होने पर फिर अमरत्व प्राप्त हो जाता है तथा जब जन्म मरण के चक्र और सांसारिक दुःख दुःखादि से अर्थात मुक्त होकर परब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त करता है ।

कामायनी

उपनिषदों में आत्म ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया है । आत्म ज्ञान को वहां परम ज्ञान और मोक्ष स्वीकार किया गया है । ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात मनुष्य किसी से घृणा नहीं करता । वह समस्त भूतों को आत्मा में ही स्थित देखता है और सर्वभूतों में आत्मा को ही देखता है जो यहां है वहीं वहां है जो वहां है वही यहां है । नानात्वद्रष्टा मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है । दृश्य अर्थात ज्ञानी उसको देखता है और उसको प्राप्त होता है वह एक होता है पुनः वही पांच, सात, नौ, ग्यारह, सौ दस एक सहस्र तथा बीस भी होता है । सभी त्रिविधा ब्रह्मान्तर्गत है । भोक्ता, भोग्य प्रेरक सभी ब्रह्म से अभिन्न है आत्मा ही ब्रह्म है । आदित्य तथा पुरुष में भी एक ही तत्व है । ज्ञानी इस मौलिक अद्वयता का अनुभव कर लेता है ।

आत्म ज्ञान की दशा में आनन्द की भी अनुभूति होती है । इस आत्म तत्व को सम्यक रूप से श्रवण तथा ग्रहण कर इस धर्मी को एकान्त रखकर तथा इस सूक्ष्म को प्राप्त कर मर्त्य अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है । यह परम मोदनीय है । विद्वान इस आत्म ज्ञान को अनिर्वचनीय परम सुख मानते हैं यह आनन्द स्वरूप शान्त, अनिर्वाण है । वह पुरुष रूप है । उसका सर्वांग प्रियामोद तथा आनन्द से निर्मित है । प्रियमेव शिरः मोदो दक्षिणः पक्षः प्रमोद उत्तर:पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म रस रूप है । इस रसं

को प्राप्त कर अभी आनन्दित होता है । प्राणानादि क्रियाओं को वही आनन्द पूर्ण करता है ।[1]

तैत्तिरीयोपनिषद में बताया गया है कि युवा, साधु, वेदज्ञ, बलिष्ट या धनवान होना एक मानवीय आनन्द है, सौ मानवीय आनन्दों के तुल्य मनुष्य गंधर्व का एक आनन्द है मनुष्य गंधर्व के सौ आनन्दों के समान पितृगण का एक सौ पितृगणानानन्दों के तुल्य आजान देवताओं का एक , सौ आजान देवानन्दों के के समान कर्म देवों का एक सौ कर्म देवानन्दों के तुल्य देवा का एक सौ देवानन्दों के तुल्य इन्द्र का एक इन्द्र के सौ आनन्दों के समान प्रजापति का एक तथा सौ प्राजापत्य आनन्दों के समान, बृहस्पति का एक बृहस्पति के शत आनन्दों के समान ब्रह्मा का एक आनन्द है । ये सभी आनन्द अकामहत वेदज्ञ प्राप्त कर पाता है ।[2]

प्रसाद ने भी इस ज्ञान स्थिति को आनन्द रूप ही माना है तथा इसे जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार किया है । वस्तुतः कामायनी चिंता को चिन्तन बनाने की प्रक्रिया है इसी कारण है इस का प्रारंभ चिन्ता सर्ग से तथा पर्यवसान आनन्द मे हुआ । कामायनी का मूल प्रतिपाद्य आनन्द वाद ही है । कामायनी मे आनन्द के प्रतिफल की प्रतिष्ठा है वह स्पष्टतः आत्मरूप है बाह्य भौतिक विषयता मे प्रसरित आनन्द नहीं यह आनन्द स्पष्टतः औपनिषदिक परम्परा से प्रभावित शैवाद्वैत प्रतिपादित अभेदरूप आत्मा

1- प्रसाद साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० 179 डा० जगदीश प्रसाद

2- तैत्तिरीयोपनिषद 2/5/1

आत्मास्वाद है जिसमें आत्म और परमात्म के ही नहीं वरन आत्म और जगत के भी पूर्ण 'ऐक्य' की भावना निहित है।'[1]

कामायनीकार ने आनन्द तत्व में निहित मोक्ष की स्थिति को समरसता के स्वरूप में देखा है। कामायनी के आनन्द का स्वरूप जगत के भौतिक आनन्द से भिन्न है। संसार में जो माधुर्य एवं क्षणिक अनुभूति का भाव है, वह तो वस्तुतः आनन्द की छाया मात्र है। इस आनन्द के प्राप्त होने पर वासना का आकर्षण और अतृप्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। वह अखण्ड है इस आनन्द की उपलब्धि होने पर मानव मोक्ष की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के बाह्य द्वन्द्व जैसे, सुख दुख और जड़-चेतन स्थितियाँ समरसता के कारण समाप्त हो जाती है।[2]

प्रसाद कहते हैं कि समरसता से सुख दुख और जड़ चेतन की स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं-

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख-सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे। यह मैं हूँ,
यह विश्व नीड़ बन जाता।[3]

1-कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ पृ0 58-59 डा0 नगेन्द्र
2- हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन पृ0 310 श्री देवीप्रसाद गुप्त
3- कामायनी आनन्द सर्ग प्रसाद

मोक्ष की स्थिति में द्वयता भी रंचमात्र को नहीं रहती । उस स्थिति में मैं की चेतना सबको स्पर्श किये सी रहती है । उस स्थिति में स्थिति को विस्मृति माना है तथा द्वयता से मुक्ति प्राप्त होने पर मनु को सर्वैव समों दिखाया है–

सबकी सेवा न परायी
वह अपनी सुख संसृति है,
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।
मैं की मेरी चेतनता
सबको ही स्पर्श किये सी,
सब भिन्न परिस्थितियों की
है मादक घूंट पिये सी ।।[1]

कामायनी में वर्णित आनन्द या मोक्ष की स्थिति में जीवात्मा मुक्त हो जाता है तथा प्रेम ज्योति से विमल होकर अपनी ही एक कला से सबको पहचानता है । भेद और विभेद समाप्त हो जाता है । सर्वत्र समरसता का ऐसा सघन साम्राज्य हो जाता है कि चेतनता की ही चेतनता परिलक्षित होती है और जीव अखण्ड आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है–

प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम ज्योति विमला से,
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से ।

1- कामायनी आनन्द सर्ग प्रसाद

कारण है जड़ या चेतन
सुन्दर आकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था ।[1]

पार्वती

पार्वती महाकाव्य में मोक्ष को अनिर्वचनीय कहा गया है । कवि ने मदन के माध्यम से मोक्ष की चर्चा करायी है । इन्द्र के निर्देश पर जब मदन शिव की समाधि भंग करने जाते हैं उस समय के उनके कथन से कवि ने मोक्ष का स्पष्ट किया है-

नाथ । धर्म का यशोगान है, नभ-मण्डल में छाया
और अर्थ की कीर्ति विश्व की मनोमोहिनी माया ।

मोक्ष अनिर्वचनीय विपुल पर उसके गान वचन में
वाणी में है मुक्त अन्यथा जो निबद्ध बन्धन में,
किन्तु काम को तो कृतार्थता केवल कृति में जानी
अतः विशिष्ट क्षणिक वचन में मुझ का चिर अनुगामी ।।[2]

1-कामायनी आनन्द सर्ग प्रसाद
2-पार्वती पृ0 115 भारतीनन्दन

कवि ने शिव के संदेश के माध्यम से बताया है कि आत्म निष्ठ तपस्वी के लिए विश्व में कोई भी पराया नहीं होता है उसके उर में प्रबुद्ध आत्म भाव विद्यमान रहता है-

> आत्म निष्ठ तपस्वियों को पर न कोई विश्व-उर में
> शील और सत्कार से नव आत्म भाव प्रबुद्ध उर में
> बस दर्शन से चिरंतन आत्म भाव नवीन होतो
> अन्यथा भी सज्जनों का लक्ष्य प्राप्त पदीन होता ।[1]

इस प्रकार कवि ने इस काव्य में मोक्ष को मुख्यतः अनिर्वचनीय स्वीकार किया है ।

जय भारत

जय भारत महाकाव्य में मोक्ष के स्वरूप का सीधा वर्णन नहीं है । कौरवों पर विजय प्राप्त करके पाण्डवों ने जो स्वर्गारोहण किया है उसी को मोक्ष प्राप्ति का प्रयास यदि माना जाय तो कवि ने स्पष्ट किया है कि स्वर्ग में असीम शांति का अनुभव होता है ।

मोक्ष को दार्शनिकों ने ज्ञान के रूप में भी स्वीकार किया है । इस सम्पूर्ण रचना में कौरव दल अज्ञान से परिपूर्ण है तथा पाण्डव ज्ञान युक्त है । कवि ने स्पष्ट किया है कि संसार वैमनस्य और परत्व की प्रतीति ही बन्धन

1-पार्वती पृ0 159 भारतीनन्दन

है तथा इस स्थिति से ऊपर उठना ही आत्म स्थिति को प्राप्त करना है । कवि ने स्पष्ट किया है कि स्थितिप्रज्ञ व्यक्ति स्वयं मे स्थिर रहता है । वह हर्ष और विषाद के प्रति समान भाव रखता है। उसे न तो किसी से मोह होता है और न ही उसके मन मे किसी के प्रति द्रोह होता है वह राग-द्वेष-भय रहित रहता है । स्थितिप्रज्ञ स्वाधीन तथा स्ववश मे रहता है । इन्द्रिया उसके संकेतो पर कार्य करती है । वह इन्द्रियो के संकेत पर कार्य नही करता है-

व्यर्थ है तेरा प्रवाद
भरा है तुझमे विषम विषाद ।
आपको स्थिर कर तू पहले
एक सा हर्ष शोक सहले ।

तुष्ट जो अपने मे रहते
उन्ही को स्थित प्रज्ञ कहते ।
त्यागकर मन के सारे काम,
वही होते है आत्माराम ।

किसी से जिन्हे नही है मोह
नही है जिन्हे किसी से द्रोह
रहे जो राग-द्वेष-भय हीन
वही है स्थित प्रज्ञ स्वाधीन ।।

इन्द्रिया है जिनके वश मे
चित्त भी विषयो के रस मे
दुःख-सुख जिनको एक समान
उन्ही को स्थित प्रज्ञ तू जान ।।[1]

---

[1] ...... पृ० 66. मैथिलीशरण गुप्त

अर्जुन के मोह के प्रसंग में कवि ने कृष्ण के मुख से अर्जुन को यह भी स्पष्ट कराया है कि स्थित प्रज्ञ हानि में आहनहीं भरता और उसे लाभ की कोई चाह नहीं होती वह भोगों से निर्लिप्त होता है तथा उसे कर्तव्य और अकर्तव्य का पूर्ण ज्ञान होता है-

हानि लाभ से भरे नहीं जो आह
लाभ की जिन्हें नहीं कुछ चाह
और जो है अलिप्त भोगी,
वही है स्थित प्रज्ञ योगी ।।[1]

स्थिति प्रज्ञ व्यक्ति का प्रभु स्वयं वहन करते हैं । इस का तात्पर्य यह है कि प्रभु की कृपा से ही व्यक्ति स्थिति प्रज्ञता प्राप्त कर पाता है । अर्जुन को उपदेश के माध्यम से यह बात कवि ने इस प्रकार व्यक्त की है-

युद्ध तू निज कर्तव्य विचार,
जीत के समय स्वयं मत हार ।
लिया है मैंने तेरा भार
ठहर तू मेरी ओर निहार ।।[2]

इस प्रकार कवि ने ज्ञान प्राप्ति की स्थिति को ही मोक्ष स्थिति स्वीकार किया है तथा स्थिति प्रज्ञता पर विशेष बल दिया है ।

1- जय भारत पृ0 365-66 मैथिलीशरण गुप्त

2- वही पृ0 366

ऋतंबरा

मोक्ष की स्थिति में मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ज्ञान के द्वारा वह ममत्व और परत्व के घेरे से ऊपर उठकर निखिल ब्रह्माण्ड के प्रति एक समत्व दृष्टि प्राप्त करता है। ऋतंबरा में कवि ने ब्रह्मा की समाधि के माध्यम से ज्ञान की स्थिति का वर्णन किया है-

शमित समाधि की ज्वाला, झाँकी असीम गोपन की।
विधि सी झुलने प्रति पल, आँखों का पथ गहि मन की।

वह मनोयोग विस्मृति का, भूला अपना पन सारा।
अविरल बहती आती थी बस तन्मयता की धारा॥[1]

समाधि द्वारा प्राप्त ज्ञान स्थिति में कवि कहता है कि किसी अदृश्य कोने से तारों की छिटकने लगी- वह तारे अचानक उज्ज्वल प्रकाश की रेखा बन गयी- ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी विशाल ज्योति सौध में ज्योति कुंजों से मुक्त ज्योति की धारा छूट रही हो- कवि कल्पना करता है कि प्रकाश के इस महोत्सव में ऐसा प्रतीत होता था जैसे ज्योति के कोमल संगीत की फुलझड़ियाँ छूट रही हों। इस ज्योति दृश्य की एक एक किरण भी तो रजनीश और दिनेश की ज्योति से भी अधिक ज्योतित और प्रकाशित थी। कभी प्रकाश में जड़ प्रतीत होता था तो कभी जड़ में प्रकाश मालूम देता था। सर्वत्र प्रकाश की ही परिव्याप्ति थी-

---

1- ऋतंबरा पृ0 19-20 केदारनाथ मिश्र प्रभात

साड़ी-सी लगी छिटकने अनजान किसी कोने से
मानो निकला आता हो सौन्दर्य छलक दोने से ।

आगमन मुहूर्त किसी का मानो जब ध्यान आता हो
स्वागत मे प्रत्येक पल हो मानो दर्पण बन जाता हो ।

वह आती क्यों अचानक उज्ज्वल प्रकाश की रेखा ।
प्रार्थना भरे नयनों से प्रभा ने जिसने देखा ।-

सब ओर ज्योति का मंडप मंजुल मन हरने वाला
सब ओर ज्योति की चादर ज्योति कणों की माला ।

सब ओर ज्योति की कोमल संगीत भरी फुलझड़ियाँ
सब ओर ज्योति के विस्मय-विस्तार कुसुम की लड़ियाँ

सब ओर ज्योति के दीपक हिल मिल-मिल जुल कर हँसते
प्रत्येक दीप मे सौ-सौ रत्नेश दिनेश विहँसते ।

ज्योति कण तैर रहे हैं मानो हों विहग रंगीले
मानो छवि के पारावार उठते हुंकार सजीले ।

मानो प्रकाश मय जल हो मानो प्रकाश मे जल हो
जल मे प्रकाश की मानो परिव्याप्ति सघन अतल हो ।[1]

मनु को उद्बोधन देते हुए कवि ने बताया है कि जब मुक्ति की शिख
जलती है तब पार्थिवता की आत्मा का मधुर भाष्य होता है-

---

[1] कलिंगा-पृ0 130 केदारनाथ मिश्र प्रभात

शिंजिनी मुखरित की मधुर-मधुर जब उठती
जिसमें मानव का स्वर होता है अपने
सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तर का स्वर भी
होता है ज्यों खुलते कलियाँ ये अपने ।

स्वर से स्वर मिलता मिलता हृदय हृदय से
अनुभूति हृदों की प्राणों से लिपटाती
सौन्दर्य चरम अस्तित्व सृजन का होता
आत्मा का मधु पी पार्थिवता मुस्काती ।।[1]

मनु के आत्म बोध के माध्यम से भी कवि ने मोक्ष का ज्ञान स्थिति का वर्णन किया है । आत्म बोध प्राप्त होने पर मनु को प्रतीत होता है कि तम के विश्व का पट छूट गया है, विश्व की धाराएं भागने लगी हैं और महाशून्य के किरणों से भिन्न सौरभ के पथ पर अमृत वाहिनी का सुवर्ण पट लहरा रहा है-

तम के विश्व का पट गया छूट
विश्व की धारा से लगी भागने
महाशून्य के किरणों में होकर अधीर
सौरभ के पथ पर देखा पड़ा
छवि का सुवर्ण पट
अमृतवाहिनी का लहराता हुआ शरीर ।[2]

1- शर्वरी पृ० 130 कैलाशपति मिश्र प्रभात
2- वही 146

मनु को यह अनुभव होता है कि वे अखण्ड प्रकाश का एक कण हो गए हैं उनके चारों ओर आत्मा पंख पसार कर तैर रही है। सर्वत्र आत्मा का ही स्वर दृष्टिगत हो रहा है-

> संगिनि मैं हूँ आज प्रकाश अखण्ड
> मेरे चारों ओर तैरती आत्मा पंख पसार
> जैसे स्वर्ण-विहंग
> लहराती, गाती, बरसाती उर्मिल स्वर-मधु-धार
> जैसे बीन अभंग
> आत्मा का स्वर उठता ऊपर मेघों के उस पार
> जैसे पवन-हिलोर
> मृदुल बीच यु का अंचल पट छूने को सुकुमार
> झुकता भाव-विभोर।
> आत्मा का स्वर तिमिर नदी की देह ।[1]

इस प्रकार कवि ने मोक्ष की ज्ञान स्थिति स्वीकार किया है तथा यह बताया है कि ज्ञान प्राप्त हो जाने पर माया जन्य तमस की समाप्ति हो जाती है।

लोकायतन-

लोकायतन महाकाव्य में विशेष रूप से महर्षि अरविन्द के अन्तश्चेतनवाद की झलक है अतएव मोक्ष स्थिति के वर्णन में भी कवि प्रायः अरविन्द

1- ऋतंबरा पृ0 154 केदारनाथ मिश्र प्रभात

दर्शन से हो प्रभावित रहा है । ज्ञान प्राप्त होने की स्थिति का वर्णन करते हुए पंत जी ने बताया है कि मानों चेतना के शिखर पर सूर्योदय हो रहा हो और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखर गया हो-

ऊषाओं के मुख का सौन्दर्य अनामय
भू स्वर्ग सुमन पावक सा खिल ज्योतिर्मय
अवतरित हो रहा पलकों पर हर भव भय,
चेतना शिखर का सा एक सूर्योदय ।

आनंद शांति श्री शोभा में संयोजित
पीयूष सिन्धु सा, अपने ही में मज्जित
स्वर्गीय प्रेम करता और उन्मोचित
रस तप्त स्वर्ण सा खिल मरन्द से सुरभित ।[1]

स्वर्णिम रेखाओं में ही सम्मुख अंकित
चेतना हो रही नव स्वर्गों में विकसित ।
रस रहा ऊर्ध्व समदिग जीवन में विस्तृत
आया भव के ताने बानों में गुंफित ।।[1]

कवि का विचार है कि जब व्यक्ति एक प्रकाश प्राप्त करेगा तभी आनन्द का स्पर्श मिलेगा और तभी उसे सामूहिक जीवन मुक्ति प्राप्त हो सकेगी । कवि का यह मानता है कि इच्छाओं के पाश से मुक्त होकर सर्वात्म भाव प्राप्त करना ही मुक्ति है । कवि यह मानता है कि जीवन का केन्द्र ईश्वर को बनाने और जीवन उसे अर्पित करने के उपरान्त ही सामूहिक मुक्ति

1- लोकायतन- पृ0 218 सुमित्रानन्दन पंत

सालोक्य मुक्ति मुद सेवक को सुलभ था।
सामीप्य लाभ सुर को सुरवृन्द को मिला
सारूप्य ले कर साधक सिद्ध हो गये।
सायुज्य प्राप्त आप शंकर पूर्ण काम थे।[1]

इस प्रकार श्री राष्ट्रीय आत्मा ने अपने काव्य में मुख्य रूप से सालोक्य सारूप्य और सायुज्य मुक्ति का उल्लेख किया है।

<u>कृष्णायन-</u>

कृष्णायन के कवि ने सत्य मुक्ति प्राप्त व्यक्ति को ही मोक्ष प्राप्त कहा जाता है। इस स्थिति में साधक कर्मो धर्म फलों का त्याग कर देता है जन्म और मृत्यु के बंधनों से ऊपर उठ जाता है। उसके समस्त मोहावरण समाप्त हो जाते हैं-

ज्ञानी जन सत्य मुक्ति धारे
त्याग कर्म जात फल सारे।
जन्म बंध ते देत छिटायी।
ब्रह्म हुआ विरहित पद पाय
मोह आवरण फट सब भारी
लखि ममता मुक्ति तुम्हारी।[2]

1- जानकी जीवन पृ0 416 श्री राष्ट्रीय आत्मा

2- कृष्णायन पृ0 106 द्वारिका प्रसाद मिश्र

मोक्ष की स्थिति में योग युक्त साधक लाभ-अलाभ, जय-पराजय आदि में समान व्यवहार करता है। कृष्ण मोक्षदायी इस सांख्य योग का उपदेश अर्जुन को इन शब्दों में देते हैं-

दुःख-सुख लाभ अलाभहु दोऊ
जय अरु अजय मानि सम दोऊ।

करहु समर निज हतहु अराती
दुहि तुमहि न अघ यहि भाँती।

सांख्य ज्ञान यहि भाँति कहिनहुँ योग विधान।
कटिहौं बंधन कर्म के पाय कहूँ जो ज्ञान।[1]

मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधन रूप में पं० द्वारिका प्रसाद जी ने गीता की भावना के अनुरूप ज्ञान और भक्ति दोनों ही मार्गों का समान रूप से महत्व स्वीकार किया है-

पुनि कह हरि प्रति अर्जुन मति सन-
कहहु कर्म सन्यास प्रशंसन।
योग प्रकाश पुनि तुम करहु
एक जो श्रेय सुनिश्चित कहहु।
भक्त वचन सुनि कह भगवाना
करत पंथ दोउ मोक्ष प्रदाना।[2]

1- कृष्णायन पृ० 305 द्वारिका प्रसाद मिश्र
2- वही 313

मोक्ष का बन्धन का ही दूसरा नाम है । मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त जीव जागतिक माया मोह से विरत होकर समत्व दृष्टि प्राप्त करता है । कृष्ण इसी लिए अर्जुन को ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देते हैं । कृष्ण उन्हें बताते हैं कि माया से मोहित होकर ही जीव भ्रम भुलैया में पड़ा हुआ है । इसका हित इसी में है कि वह अज्ञान को नष्ट करके ज्ञान की प्राप्ति करे-

> कर्म पाशु ईपी न प्रभु कृत
> प्रकटति हि सो यह सर्व प्रवृत्ति
> पार्थ जो पाप पुण्य जग माही
> देहु तारि परमेश्वर नाही ।
> ढांकि लीन्ह ज्ञानहि अज्ञाना
> माया मोहित जीव भुलाना ।
> ज्ञान ते जाइ नष्ट अज्ञाना
> तेहि हित अर्जुन तेहि कर ज्ञाना
> करत प्रकाशित पूर्ण समाना
> उज्ज्वल पर ब्रह्म भगवाना ।।
>
> ब्रह्म,बुद्धि ब्रह्मात्म जो ब्रह्मनिष्ठ रत जोय ।
> लह न जन्म पुनि, तीरथ अघ,जाति ज्ञान जब धोय ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वारका प्रसाद जी ने धर्म और पाप से ऊपर की स्थिति को मोक्ष माना है । मोक्ष प्राप्त हो जाने पर जीवा

1- कृष्णायन पृ0 514 द्वारका प्रसाद मिश्र

या साधक को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो जाता है जिसमें न कोई छोटा होता है न कोई बड़ा, न कोई धनी होता है न कोई निर्धन । उस स्थिति मे न लाभ होता है अलाभ, न जय होती है न पराजय, न सुख होता है न दुख ।

विदेह

विदेह राज जनक के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य मे कवि श्री पोद्दार रामावतार अरुण ने ज्ञान को मोक्ष का रूप स्वीकार किया है तथा जनक के जीवन के माध्यम से बताया है कि सांसारिकता से मोक्ष प्राप्त कर लेने के उपरान्त साधक योग मे भोग और भोग मे योग को जीता है । आत्मज्ञानी सिन्धु मे बिन्दु और बिन्दु मे सिन्धु का दर्शन करता है । उसकी आत्मा से मानवता का संगीत निःसृत होता है

योग मे भोग भोग मे योग
कठिन कितना है मानव धर्म
जानते वाल्मीकि और व्यास
तुम्हारे तप के अक्षय मर्म ।

सिन्धु को बिन्दु बिन्दु को सिन्धु
जानने वाले हो तुम कौन
स्वयं बनकर मिट्टी की ज्योति
छिपाने वाले हो तुम कौन ।

मनुज के आत्मज्ञान की शक्ति
सृष्टि का सत्य स्वयं आगार
यही है मानवता संगीत
आत्म से उठती जो झंकार ।[1]

सांसारिकता से मोक्ष प्राप्त व्यक्ति सुख दुख से दूर रहता है । उसकी आत्मा सांसारिकता से निरपेक्ष रहती है । उसका तन मानव मात्र का तन होता है, उसका हास मानव मात्र का हास होता है । और वह हास तन से निर्लिप्त भी होता है । मोक्ष प्राप्त व्यक्ति की भी वेदान्त में यही स्थिति बताई गयी है । कवि के शब्दों में देखिए

लेकिन ऐसे भी मानव हैं
जिनके सुख दुख की थाह नहीं
मुस्कान अश्रु दोनों में कोई भेद नहीं
रहते हैं जन मन के मन में
हंसते हैं जब मानव हंसता
रोते हैं जब मानव रोता
पर उनका तन-हास आत्मा से दूर दूर ।।[1]

इस प्रकार कवि ने मोक्ष का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया है कि मोक्ष प्राप्त कर लेने के उपरान्त मानव सांसारिक विकारों से ऊपर उठ जाता है । उसे सत और आनंद का शाश्वत भेद प्राप्त हो जाता है जिसके कारण वह संसार में विचरण करता हुआ भी संसार में विचरण नहीं करता ।

रामराज्य

रामराज्य में मोक्ष का प्रयोग ज्ञान के अर्थ में हुआ है । कवि ने भव बंधनों से मुक्त ऐसे व्यक्ति माना है जो ज्ञान की धारा में मज्जन करते

1- विवेक पृ0 121 पोद्दार रामावतार अरुण

यही सच्ची शिक्षा है और
उसी से सुधरेगा व्यवहार ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि पं0 बल्देव प्रसाद जी मोक्ष के संदर्भ में ऐसे ज्ञान पर विशेष बल देते प्रतीत होते हैं जिससे जन जन के मन को अंधकार से मुक्ति प्राप्त हो सके ।

अरण्य रामायण-

प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है वे भक्तों को तो मोक्ष पद देते ही हैं जिन असुरों या दुरात्माओं का संहार करते हैं उनके प्रति भी सम्पूर्ण ममत्व रखते हुए उन्हें मोक्ष पद प्रदान करते हैं । अरण्य रामायण में ऐसे कई प्रसंग हैं जिसमें दुरात्माओं को भी प्रभु ने उनके मृत्यु काल में पूर्ण ज्ञान प्रदान कर दिया है । ऐसे पात्रों में बालि भी एक प्रमुख पात्र है । वह अपने मरण के समय श्रीराम से कहता है । मरने से पूर्व मुझमें एक नवीन विचार उत्पन्न हो गया है । मुझे वह सब दिखाई देने लगा है जो सामान्यतः अगोचर है । भौतिक नेत्रों से जो दृष्टिगत नहीं होता है मुझे अभी तक यह मालूम नहीं था कि पृथ्वी पर भी आकाश विद्यमान है । किन्तु आज आपके दर्शनों से मुझे इसका भान प्राप्त हो गया है । मुझे जहाँ मैं हूँ वहीं आप हैं । पहले मुझे यह ज्ञात नहीं था कि आप कहाँ हैं-

मरने के पहले मुझमें अब आत्मज्ञान नवीन
शुचि सुलभ्य तुम्हारे चरण स्पर्श से मन मलीन ।

1- रामराज्य पृ0 50 बल्देव प्रसाद मि0

'मैं देख रहा हूं वह जो सदा अगोचर था।
मैं नहीं जानता था कि तारा पर अम्बर था।
तुम जहाँ वहीं मैं हूं मैं कहीं जहाँ तुम हो,
पहले मैं नहीं जानता था कि कहाँ तुम हो।'[1]

हनुमान और रावण के बीच वार्तालाप के माध्यम से भी कवि ने मोक्ष का स्वरूपस्पष्ट किया है। हनुमान रावण को बताते हैं कि आत्मिक प्रकाश में ही सत्य छिपा हुआ है-

क्यों सब भिन्नता- कुत्सित विविधता छोड़ो तो ?
वैज्ञानिक रावण इस रहस्य को छोड़ो तो ?

सब इसी ज्ञान की गरिमा में आत्मिक प्रकाश
है इसी सत्य में छिपा हुआ चेतना काश

टिकना पड़ता है किसी बिन्दु पर लोचन को
छोड़ो छोड़ो महेन्द्र आज अन्तर्मन को ।।[2]

स्पष्ट है कि चौधरी रामावतार अरुण ने भी मोक्ष को ज्ञान
ही रूप स्वीकार किया है तथा बताया है कि ज्ञान की स्थिति प्राप्त हो जाने पर सांसारिक माया मोह समाप्त हो जाता है।

1-अरुण रामायण-चौधरी रामावतार अरुण

2- वही पृ0467-68

भगवान राम

महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में गुरु वशिष्ठ के उपदेश के माध्यम से जीवन मृत्यु एवं अन्य दार्शनिक महत्व की बातों के साथ मोक्ष स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। कवि ने इस संदर्भ में जीवन के द्वन्द्व प्रधान माना है तथा अनुद्विग्नता पर बल दिया है-

मनुज जीवन द्वन्द्व प्रधान है
प्रबल मोह विनाशक शान्ति है
असुख में स्थिरता सम बुद्धि है
जगत के रहते दृढ़ संयमी ।

उचित राग नहीं भव द्वन्द्व का
विमल हो न कृपा निज धर्म है ।
विगत शोक प्रजा हित-धारणा
उचित सम्मत कार्य सदा करो ।

मरण है गति अन्तिम जीव की
प्रकृति जन्य शरीर अनित्य है ।
उचित शोक धरापति जानकी ।
अमित धैर्य दिया ऋषि वर्ग ने ।[1]

1- भगवान राम पृ0 192 [illegible]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राय: सभी महाकाव्यकारों ने मोक्ष की स्थिति में अज्ञान का विनाश तथा अज्ञान के विनाश की स्थिति में सम्यक् [illegible] पर बल दिया है। सभी महाकाव्यकारों का विचार है कि मोक्ष प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति सांसारिकता के बंधनों से ऊपर उठ जाता है। उसे काम क्रोध मद लोभ मोह आदि पंच विकार प्रभावित नहीं कर पाते हैं वह अखण्ड आनन्द में लीन रहता हुआ अन्य प्राणियों को भी आत्मिक सुख का मार्ग उपदिष्ट करता है।

****

अष्टम अध्याय

आलोच्य काव्यों मे जीवन दर्शन

अष्टम अध्याय

आलोच्य काव्यों में मोक्ष साधन का स्वरूप

मोक्ष के संबंध में दार्शनिकों के सिद्धान्तों में मत वैविध्य है । कुछ विद्वान मृत्यु को मोक्ष मानते हैं तो कुछ साधना की ऐसी उच्च स्थिति को जहाँ पहुँच कर साधक ममत्व और परत्व से ऊपर उठ जाता है किन्तु प्रायः सभी दार्शनिक इस बात पर एक मत हैं कि अज्ञान का विनाश मोक्ष की स्थिति प्राप्त करने के लिए एक परमावश्यक साधन है । कतिपय निष्ठा ज्ञान प्राप्ति, निष्काम कर्म एवं धर्म संगत आचरणों पर भी विभिन्न कवियों ने इस संदर्भ में विवेचन कर दिया है ।

प्रिय प्रवास

प्रिय प्रवास के नायक श्रीकृष्ण के जीवन से मिलने वाली शिक्षाएं ही इस काव्य में मोक्ष साधन का स्वरूप स्पष्ट करती हैं । श्रीकृष्ण का

चरित्रगत काव्य में लोक सेवा लोक हित तथा पुण्य कर्मों से परिपूर्ण दिखाया गया है । इस काव्य की एक विशेषता यह है कि भगवान कृष्ण ने जिन राक्षसों का वध किया है कवि ने उन्हें मोक्ष नहीं प्रदान करायी है । इस दृष्टि से कवि के विचारों में काफी नवीनता भी है क्योंकि पुरानी मान्यता यह है कि प्रभु के हाथों मृत्यु से मोक्ष पद सुनिश्चित हो जाता है किन्तु यहां कवि ने दुरात्माओं की दुर्गति और भयंकर मृत्यु दिखायी है ।

कवि ने बताया है कि काम क्रोध लोभ, मोह व तृष्णा आदि कार्यों के कारण जीव बन्धन में पड़कर नारकीय यातनाएं सहन करता है और परोपकार परहित, लोक हित और लोक सेवा द्वारा न मात्र इस लोक में ही वरन उस लोक में भी जीवन को अक्षय एवं अनन्त सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है ।

कवि के इन विचारों से स्पष्ट है कि वह जीवन के सर्वांग विकास और पारलौकिक सुख शान्ति या मोक्ष के परम पद हेतु सत्कर्मों को विशेष महत्व देता है । उसके अनुसार जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में एक मात्र सहायक लोक सेवा और अपने सत्कर्म ही है । कवि ने हिंसा आदि का भी विरोध किया है किन्तु यदि हिंसा अपरिहार्य हो जाय और वह लोक कल्याण कारी हो तो वह मोक्ष साधन में व्यवधान नहीं बनती है । उस समय वह धर्म का एक अंग होती है । कवि ने बताया है कि पिशाच जैसे कर्म करने वाले नर का वध पाप नहीं है । अतः उत्पीड़क को दंड मिलना ही चाहिए

अवश्य हिंसा अति निंद्य कर्म है
तथापि कर्तव्य प्रधान है यही ।
न सद्म हो दूषित चर्म आदि से
वसुंधरा में पनपे न पातकी ।।

मनुष्य क्या, एक पिपीलिका कभी
न वध्य है जो न अवध्य हेतु हो ।
न पाप है किंतु पुनीत कार्य है
पिशाच कर्मी नर को वध क्रिया ।

समाज उत्पीड़क धर्म विप्लवी
स्वजाति का शत्रु दुरन्त पातकी ।
मनुष्य द्रोही भव प्राणि-पुंज का
न है क्षमा-योग्य वरंच वध्य है ।

क्षमा नहीं है खल के लिए भली ।
समाज उत्सादक दण्ड योग्य है ।
कुकर्मकारी नर का उबारना
सुकर्मियों को करता विपन्न है ।[1]

इस प्रकार इस महाकाव्य में कवि ने कुकर्मों पर विशेष बल देते हुए मानव मात्र के कल्याण का उद्देश्य दिया है तथा परमात्मा से मिलन का इस उपाय को ही एक मात्र का साधन स्वीकार किया है ।

साकेत-

साकेत में मोक्ष साधनों का विवेचन रामानुज के विशिष्टाद्वैत के आधार पर परिलक्षित होता है । रामानुज दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये गये हैं- कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति और प्रपत्ति ।

1- प्रियप्रवास 13/78।

वैदिक कर्मों के अनुष्ठान और चित्त शुद्धि एवं ईश्वर के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति मिलती है । बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिलती (यही अनात्म मुक्ति,) ज्ञान के उदय होने पर ईश्वर में भक्ति होती है भक्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर जब के सारे बन्धनों को काट देता है क्लेशों को क्षीण कर देता है, संशय को दूर कर देता है तब जीव ब्रह्म सिद्ध हो जाता है । प्रपत्ति को शरणागति भी कहते हैं । दीन भाव से भगवान की शरण में जाकर जीव परम कल्याण को प्राप्त होता है । भगवान भी गीता में 'मामेकं शरणं व्रज' के द्वारा यही उपदेश देते हैं । शरणागत होने पर ईश्वर जीव को अनुग्रह प्रदान करता है । यही प्रपत्ति मोक्ष का सबसे बड़ा उपाय है ।[1]

साकेत में कर्मयोग ज्ञान योग, भक्ति और प्रपत्ति पर विशेष बल दिया गया है । अतएव मोक्ष के उपायों की दृष्टि से साकेत का विशेष महत्व है । कर्मयोग की दृष्टि से साकेत का कवि पुरुषार्थ को विशेष महत्व देता है वह अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम' वाले सिद्धान्त का घोर विरोधी है । कभी राम के मुख से तो कभी शत्रुघ्न या लक्ष्मण आदि के मुख से वह कर्म के प्रति निष्ठा में जाकर संदेश देता चलता है-

> करके अपना कर्तव्य रहो संतोषी
> फिर विफल हो कि तुम विफल न होगे दोषी ।।[2]

x x x

1- भारतीय दर्शन पृ0 321 डा0 बलदेव उपाध्याय.

2- साकेत अष्टम सर्ग मैथिलीशरण गुप्त

फल की चिन्ता नहीं धर्म की जाको ध्यान है ।[1]

x x

ठहर ठहर ओ जग कूपा! देखा न कर आस को
कर केवल कर्तव्य छोड़ दे चिन्ता फल की ।।[2]

साकेत कार के राम का तो अवतार ही कर्म करने के लिए है-

पथ दिखाने के लिए संसार को
दूर करने के लिए भूभार को
सफल करने के लिए जन दृष्टियाँ
क्यों न करता वह स्वयं निज सृष्टियाँ ।[3]

मोक्ष के साधनों के सन्दर्भ में साकेत कार ने आस्तिकता की व्याख्या की है । साकेत कार निरन्तर आत्मसाक्षात्कार की प्रेरणा देता चलता है तथा भक्ति और प्रपत्ति के महत्व को प्रतिपादित करता है । साकेत के राम भक्त और भगवान के संबंधों को निरन्तर स्वीकार करते चलते हैं । वे अयोध्यावासियों को बताते हैं-

सोचो तुम संबंध हमारा नित्यका
जब है भव में उदय आदि आदित्य का ।
प्रजा नहीं तुम प्रकृति हमारी बन गयी
दोनों के सुख दुख एक में सन गयी ।।[4]

1- साकेत द्वादश सर्ग मैथिलीशरण गुप्त
2- वही
3- वही प्रथम सर्ग
4- वही पंचम सर्ग

विरहिणी-

मोक्ष साधन के रूप में सोम जी ने विशेष रूप से भगवत कृपा को महत्व दिया है तथा ज्ञान कर्म एवं भक्ति की त्रिवेणी को उसका साधन माना है-

तब छोड़ मुक्ति पद मुक्ति-पंथ की खोज में,
क्यों घूमती जैसे जाता भ्रमर सरोज में ।
तब ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी तारती,
भारती भाव मग्ना उतारती आरती ।।[1]

कवि का विचार है कि विरहिणी जीवात्मा ईश्वर की भक्ति द्वारा ही मोक्ष को प्राप्त करते हुए आवागमन के चक्र से छूट सकती है । उसके क्लेश, भय और शोक से मुक्त होने का एक मात्र उत्तम साधन परमात्मा के प्रति अनुरक्ति है-

कर देते हैं मुक्त पार उभय तट लोक से,
पर आवागमन-विहीन लोक में लोक से ।
प्रभु मिलन विहीन है भक्ति-भाव आलोक से
जीवात्मा होती मुक्त क्लेश-भय शोक से ।।[2]

विरहिणी में सोम जी स्पष्ट घोषणा करते हैं कि यदि प्रभु कृपा हो जाय तो समस्त भव बन्धनों से जब मुक्त हो जाता है क्योंकि जीवात्मा को मोक्ष दिलाने वाला एक मात्र परमात्मा ही है । उसकी

1- विरहिणी आत्मपुरुष पृ० 30 डा० सोम

2- वही पृ० 30

कृपा के बिना मोक्ष का पद की प्राप्ति नितान्त असंभव है-

> महा कृपा हुयी तो जीव मुक्त तन बन्धन से,
> रज मे प्रविष्ट करता निकाल तन से मन से ।
> कैवल्य-के तन धरे जीव हो शक्ति युक्त,
> तड़ तोड़ बाट ज्यों करे भ्रमि को भंग मुक्त ।।[1]

मोक्ष साधन के क्रम मे जहां कवि ने प्रचलित मार्ग के समस्त साधनों का उल्लेख किया है वहीं षट चक्र या साधना पद्धति को भी विशेष महत्व दिया है । उत्क्रमण सर्ग मे कवि ने विरहिणी जीवात्मा की साधना को ऊंचाइयों पर पहुंचने का उल्लेख किया है तथा। ज्ञान की उस उदात्तता का वर्णन इस प्रकार किया है-

> चढ़ते चढ़ते तू आ पहुंची केन्द्र बिन्दु के पास सखी ।
> अब हो जा केन्द्रस्थ जहां है तेरा प्यारा प्रभु सखी
> स्वर्ग धाम भी बन्दीगृह है दिव्य भोग परतंत्र यहीं
> इसी जहां निवृत्ति बन्धन है तू भी यहां स्वतंत्र नहीं ।

> मुक्ति और एकान्त मुक्ति तो निवृत्ति द्वार के ऊपर है,
> विस्तृति विरति विवृति, अवनति, धृति की संवृति सब भू पर है।
> यह उत्क्रमण शून्य मे होगा होने शून्य ही ओत सखी,
> इस शून्य मे रूपों की सत्ता ओत प्रोत सखी ।।

> शून्य रिक्त अवशिष्ट सभी है जहां स्वभाव राज्य करता,
> जहां न कर्ता एक स्वीयता केवल एक आत्म धरता ।
> बनो स्वयं प्रभु है स्वभाव, तू स्वरति, स्वकीय आत्म रमणी
> आप आप सौभाग्य सफल है आज स्वयं ति उत्क्रमणी ।[3]

1- विरहिणी आत्म कुसुम पृ0 20 आ0 सोम

अभिनय करते हुए भी सदामुक्त होते हैं, ज्योतिषी जी ने उन्हें उनकी साखी उदाह भी सुनाई है-

रागी बनि भोगत विषय त्यागी नाम धराइ ।
तुटि भवा धन जोतिषी धाम बनावत आइ ॥
धाम बनावत आइ, गृह गुरु शिक्षा देही
शिष्यनिष्ठ विहीन स्वार्थी को शिक्षा देही ॥
देहो के सुख सुखी न देहो मे रति पागी ।
नृपति निकारे देख देश मे निरखि विरागी ॥[1]

कवि का यह विचार है कि कुंडलिनी जिरूप करके सिंहासन द्वारा जो समाधि स्थिति प्राप्त करता है वह जाति पाँति के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । जागतिक व्यवहारों से मुक्त हो जाता है तथा उसका सांसारिक प्रपंच समाप्त हो जाता है-

कुंडलिनी का कुरूप करि, सिंहासन सम साधि ।
ब्रह्मरन्ध्र सो ज्योतिषो जाय लागि समाधि ॥
धर्माधर्म ते जोतिषो ले मनौ पवि भ्राति
माया बदरथ मे फंसे लागे जाति अरु पाँति ॥

जैस समय जब भाव, होति वही गति जीव की ।
पातक पुन्य सुभाव, मिलत यथा विधि जोतिषी ॥

उपर्युक्त गुणगन सहित, सगुन उपासक होइ ।
इष्ट न सैया क्त या प्रपंच गति खोइ ॥[2]

1- श्रीरामचन्द्रोदय ,काव्य पृ0 243 रामनाथ ज्योतिषी
2- वही

इस प्रकार इस महाकाव्य में रचनाकार ने मोक्ष के लिए सर्वाधिक उपयोगी और आवश्यक ज्ञान को माना है जो धर्म कर्म भक्ति या योग आदि द्वारा अर्जित किया जा सकता है ।

निष्कर्ष

पं0 अनूपशर्मा ने इस महाकाव्य में मोक्ष जीवन मुक्ति या निर्वाण साधन के रूप में सत्कर्मों पर विशेष बल दिया है । कवि यह मानता है कि यह संसार कर्म प्रधान है यहाँ जीव को कर्मानुसार फल भोगने पड़ते हैं । अतएव इस संसार में वही वास्तविक मुक्त है जो सत्कर्म परायण तथा भोगादि से सर्वथा विरत है । कवि तो यहाँ तक मानता है कि यदि इस धरती पर सत्कर्म परायण लोगों की बहुलता हो जाय तो यह धरती ही स्वर्ग होने योग्य है-

जो सत्कर्म परा प्रवृत्ति रखता है संसार को देखता,
सारे सुख सर्वदा भोग कर जो कल्याण को खोजता,
जो गम्भीर विनम्र न्याययुत हो, औदार्य से पूर्ण हो,
प्राणी जीवन-वासना रहित हो जीता वही मुक्त है ।

देखो जो वह सामने पुरुष है बैठा समाधीन में,
आकारिक्य स्वरूप देखा पड़ता जो निर्द्वन्द्व है मुक्त है,
वाक्संयम सदैव दान करता, मिथ्या नहीं बोलता
तीनों है इस बात को पुरुष जो- सिद्धि, सारा सुन्दर ।।

ऐसे जो जगवृत्ति बंधन बिना देखा गये मुक्त हैं
होती जो उनकी वही बहुलता तो भी धरा स्वर्ग ही

पावों पे उनके किरीट झुके है लोटते नित्य हो

मन्दाकान्ता विहीन रत्न अपनी होते महा ज्योति है ।[1]

कवि का विचार है कि जो लोग श्रद्धावान'ज्ञानयुक्त,घोर दुखी गम्भीरो तथा शुद्ध चरित्र वाले धीर किंचा और महान हैं वे ही निर्वाण की प्राप्ति करते हैं और समस्त लोकों का भोग प्राप्त करते हैं इसके विपरीत जो लोग अपने हैं और दूर्गत संसार मे निरत है वे असंख्य दुखो को सहते है-

श्रद्धावान सुज्ञान, घोर दुखी गम्भीर योगी सुधी

जो है शुद्ध चरित्र धीर,किंचा,निर्वाण पाते वही

प्राणी जो उपकार मे निरत है, वे सौख्य को भोगते

नाना क्लेश उठा उठाकर अपनी होती दुखी नित्य ही ।[2]

कवि ने उन लोगों को प्रणय और पुण्य भागी माना है जो युक्त श्रद्धावान भक्तिवान व धर्म मे लीन है-

जो है प्रेम-क्षमा युक्त वह निर्वाण के पात्र हैं,

श्रद्धा है जिनमें निवास करती वे भक्ति के सिद्ध है ।

पुण्य मे अनुराग नित्य रखते, वे धर्म में लीन है ।

प्राणी जो निज कर्म मे निरत है वे स्तुत्य है पूज्य है ।[3]

1- सिद्धार्थ पृ0 258 अनुवाद

2- वही

3- वही 287

इसके विरुद्ध कवि ने बताया है कि जो लोग इन्द्रिय भोग में संलग्न हैं, द्वेषी हैं बैरागी हैं और सांसारिकता में पूरी तरह आसक्त हैं उनसे अधिक खराब और बुरा इस संसार में कोई नहीं है कवि की दृष्टि से हिंसा इस संसार में सबसे बड़ी दुष्कृति है । जो मद चाहता है कि उसे निर्वाण पद की प्राप्ति हो उसे उक्त समस्त कार्यों से विरत होकर सत्कार्य एवं धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए ।

> भाई इन्द्रिय भोग से दुष्कर कोई नहीं बाहुरा
> द्वेषी बड़े न होन जग में बैरागी न आसक्त था
> हिंसा से अधिकान दुष्कृति कहीं देखी गयी विश्व में
> निर्वाणास्पद है वही विरत हों जो उक्त दुष्कृति से ।[1]

इस प्रकार निर्वाण या मुक्ति पद हेतु कवि ने सुकार्यों भक्ति सद्वृत्ति आदि को अपने इस काव्य में विशेष महत्व दिया है ।

कामायनी

कामायनी का साध्य और लक्ष्य आनन्द है और उसका साधन है श्रद्धा । श्रद्धा के माध्यम से ही जीव प्रत्यभिज्ञा द्वारा आत्मबोध प्राप्त करता है और पाशमुक्त होकर अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है डा० जगदीश श्रीवास्तव के शब्दों में प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव के आत्म बोध की कल्पना प्रत्यभिज्ञान के रूप में होती है । इसे पुनर्दर्शन कह सकते

1- सिद्धार्थ पृ0 287 अनूप शर्मा

मलों तथा कंचुकों से आवृत होने के कारण जीव स्वरूप को भूल जाता है
जब गुरू देशना उपासना तथा क्रियात्मक साधनाओं के फलस्वरूप वह इनसे
मुक्त हो जाता है तब उसे आत्मरूप शिवत्व की पुनः अनुभूति होती है
जीव के इस प्रत्यभिज्ञान को एक नायिका के उदाहरण से स्पष्ट किया गया
गया है । जिस प्रकार नायक के श्रवण गुण से उसमें अनुरक्ता कोई कामिनी
उसके निकट होते हुए गुण परामर्श के अभाव से हृदयंगम भाव नहीं प्राप्त
करती परन्तु दूतीवचन से गुण परामर्श कराये जाने पर तत्क्षण पूर्ण
भाव को प्राप्त हो जाती है उसीप्रकार आत्मा में भासित शिवत्व के
साथ जीव का पूर्ण भाव गुण परामर्श के अभाव में नहीं हो पाता ।
परन्तु गुरूवचनादि से सर्वज्ञत्व,सर्वकर्तृत्व लक्षणवाला परमेश्वरोत्कर्ष परामर्श
उत्पन्न हो जाने पर तत्क्षण उसे पूर्णात्मता का लाभ हो जाता है ।[1]
उस स्थिति की प्राप्ति में साधक की दृष्टि से बुद्धि नहीं श्रद्धा मुख्य सा
है । मनु जब इड़ा के निकट पहुंचते है तो वे अनेकानेक संकटों में फंस जाते है
जब कि श्रद्धा का सामीप्य प्राप्त करने पर वे असीम तोष और शांति
प्राप्त करते है । श्रद्धा की पहली भेंट और प्रथम शब्द मनु को मधुर
गुंजार सदृश प्रतीत है-

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरों का सा जब सानन्द ।
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द ।

1- प्रसाद साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ032- 22 डा0कमलेश
श्रीवास्तव

एक झटका सा लगा सहर्ष

निरखने लगे लुटे से कौन

गा रहा यह सुन्दर संगीत ?

कुतूहल रह न सका फिर मौन ।

और देखा वह सुन्दर दृश्य

नयन का इन्द्रजाल अभिराम,

कुसुम-वैभव में लता समान

चंद्रिका से लिपटा घनश्याम ।[1]

× ×

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त

विश्व की करुण कामना मूर्ति

स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण

प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति ।[1]

हृदय की वाणी में मुक्ति का मुक्ता भरने वाली श्रद्धा ही है । श्रद्धा ही मानव शतदल का मकरंद है । वह ही सूखी पतझड़ की हरियाली तथा मधुमय मादकता है-

हृदय बन रहा था सीपी सा,

तुम स्वाती की बूंद बनी,

मानस शतदल झूम उठा जब

तुम उसमें मकरन्द बनीं ।

1- कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ प्रसाद

2- वही

तुमने इस सूखे पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गयी वह इतनी ।

प्रसाद ने कामायनी में मनु द्वारा पर्वतारोहण का जो दृश्य प्रस्तुत किया है वह भी श्रद्धा को ही मोक्ष का साधन चित्रण करता है । मनु के पर्वतारोही दल का नेतृत्व श्रद्धा ने किया और पर्वतारोहण वस्तुतः दर्शन की उदात्तता तक पहुँचने का एक श्लाघ्य प्रयास है । आनन्द की सरणियों तक पहुँचने में श्रद्धा का योगदान मनु के इन विचारों से स्पष्ट है-

देखा मनु ने नर्तित नटेश,
हतचेत पुकार उठे विशेष
यह क्या । श्रद्धे बस तू ले चल
उन चरणों तक, दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल ।
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखण्ड आनन्द वेश ।।[1]

1- कामायनी दर्शन श्री प्रसाद

श्रद्धा के नेतृत्व में चिन्ता से आनन्द तक की परम आध्यात्मिक यात्रा का यह दृश्य भी इस संदर्भ में विशेष दृष्टव्य है-

ऊर्ध्व देश उस नील तमस में
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी
पथ थक कर है लीन चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी ।

दोनों पथिक चले हैं कब से
ऊँचे ऊँचे चढ़ते चढ़ते
श्रद्धा आगे मनु पीछे थे
साहस उत्साही से बढ़ते ?

मनु इस आध्यात्मिक यात्रा में श्रान्त और क्लान्त हो जाते हैं किन्तु श्रद्धा उनका अवलम्ब बनती है । उन्हें साहस बंधाती है और क्रमशः उस स्थल तक पहुंचाती है जहाँ न रात्रि होती है न दिन, ऋतुओं के स्तर तिरोहित हो जाते हैं, भूमंडल रेखा विलीन हो जाती है सर्वत्र चेतना का विलास परिलक्षित होता है । त्रिदिक विश्व और तीन आलोक बिन्दु अलग अलग दिखाई देते हैं-

ऊषा का अभिनव अनुभव था
ग्रह तारा, नक्षत्र अस्त थे,
दिवा रात्रि के संधि काल में
ये सब कोई नहीं व्यस्त थे ।

1-कामायनी रहस्य सर्ग प्रसाद

ऋतुओं के स्तर हुए तिरोहित,
भू,मण्डल रेखा विलीन सी,
निराधार उस महादेश में
उदित सचेतनता नवीन सी ।।

त्रिदिक विश्व आलोक बिन्दु भी
तीन दिखाई पड़े अलग वे
त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानो
वे अनमिल थे किन्तु सजग थे ।।[1]

श्रद्धा के माध्यम से ज्ञान या मोक्ष की उस स्थिति को प्राप्त होकर लेने के उपरान्त स्वप्न स्वाप, जागरण भस्म होकर इच्छा क्रिया और ज्ञान की लय में थे, मनु दिव्य अनाहत निनाद में तन्मय हो जाते हैं-

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था।
विश्व रंध्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था ।

स्वप्न स्वाप,जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे ।
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।।[2]

1-कामायनी रहस्य सर्ग प्रसाद
2-वही

इस प्रकार कामायनी की श्रद्धा ही मनु की आध्यात्मिक यात्रा का मूल प्रतीक है तथा मनु को कैलाश तक ले जाती है जहाँ समरस में जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था, चेतना एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।[1]

पार्वती

पार्वती महाकाव्य के शिव नीति वर्णन सर्ग में मानवाचरणों का उल्लेख है जिसके माध्यम से कवि के मानवोत्थान संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला है। कवि ने इस सर्ग में बताया है कि धर्म, कर्म श्रम साहित्य कला सेवा स्वास्थ्य ज्ञान सौन्दर्य व स्नेह आदि आत्मोन्नति का हेतु होते हैं-

धर्म कर्म आनन्द-पूर्ण जीवन जीवन योग्य,
जीवन की स्थिति में अभिन्न था सदा स्वस्थ आरोग्य
स्वस्थ सुख स्थिति निरोग थी पंचभूत की देह,
था मन का आनन्द स्वास्थ्य से संयुत ज्ञान स्नेह।

श्रम, साहित्य, कला, सेवा में था सुविभाजित काल,
स्वास्थ्य, ज्ञान सौन्दर्य, स्नेह से अंकित तन उर, भाल
था रमणी साधना जीवन, सतत साध्य आनन्द
था जीवन के पूर्ण काव्य का जन जन उत्तम छन्द ।।[2]

1-कामायनी जयशंकर प्रसाद

2-पार्वती पृ0 545 भारतीनन्दन

इसी सर्ग में कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि ज्ञान, चरित्र और सेवा भावना आदि से पूर्ण व्यक्ति धर्म अर्थ और काम के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति करता है। जीवन की साधना का योग ज्ञान, शक्ति तप क्षेम आदि में आश्रित है

ज्ञान, चरित्र, शक्ति सेवा का गौरवमय उत्कर्ष
करता था अधिकार परीक्षा नहीं स्वार्थ-संघर्ष

x x x

मानवता की ज्ञान शक्ति हो मानो स्वयं उदार
अनुशासन की हुई प्रकृति के शासन में आकार

x x x

मंदिर-अस्त्र-शस्त्र शासन से युत अधिकार विधान
कर सकते मानव समाज में नहीं नीति निर्माण ।।
अधिकृत कर तप, ज्ञान, शक्ति से क्षेम और उपचार
कर सकता कल्याण लोक का शासन का अधिकार ।

x x x

धर्म अर्थ औ काम मुक्ति का सम्यक्-पूर्ण विधान
करता था मानव समाज में शिव पथ का निर्माण ।
ज्ञान शक्ति, तप, क्षेम आदि का सैद्धान्तिक उद्योग
करता था कृतार्थ मानव का जीवन साधन-योग ।।

---

* पार्वती पृ० 546 भारतनन्दन

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने मोक्ष के साधन रूप में आचरण की मुख्यता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है तथा यह स्वीकार किया है । सदाचरणों द्वारा ही जीव पाश मुक्त हो सकता है ।

जय भारत-

जय भारत महाकाव्य में कौरवगण अहंकार के प्रतीक है तथा पाण्डव धर्म के लिए युद्धरत होते हुए सदाचार और विनय के प्रतीक है । कवि ने पूर्व कथा के अनुसार पाण्डवों पर विजय दिखाई है तथा बाद में पाण्डवों द्वारा स्वर्गारोहण भी कराया गया है । स्वर्गारोहण में भी केवल युधिष्ठिर ही सदेह स्वर्ग जा पाते है शेष चार पाण्डव व द्रौपदी अध्यात्म के प्रतीक हिमालय के शृंगों का आरोहण करते समय एक एक करके गिरते जा है । इस कथानक के माध्यम से कवि ने स्पष्ट किया है कि ज्ञान की अंतिम अवस्था प्राप्त करने हेतु युधिष्ठिर जैसा व्यक्तित्व चाहिए । तात्पर्य य है कि युधिष्ठिर के व्यक्तित्व की विशेषताएं और आचरण ही संसारि से मोक्ष दिलाने में समर्थ है । पाण्डवों के गुणों और आचरणों की चर्चा कवि ने इस प्रकार की है-

थक विथक भी रह निस्पृह
निज धर्म-कर्म कर भले भले ।
सम्पूर्ण प्रश्नों से ऊपर उठ
पाँच पंच वे कहाँ चले ?

एक एक शाश्वत रस अन्तर में
विषय-जा विषयों को त्याग चले
दु:खों से छूकर शूर अछूता,
सुख के स्वप्नों से जाग चले ।।[1]

अध्यात्म की ऊँचाइयों का आरोहण करते समय कवि ने जिस समय एक एक करके पाण्डवों को गिरते दिखाया है, युधिष्ठिर के मुख से कुछ महत्वपूर्ण वाक्य भी कहलाये हैं-

द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन व भीम के प्रति युधिष्ठिर के ये वाक्य साधना की विभिन्न स्थितियों और उनके व्यवधानों का संकेत करते हैं-

तुम नहीं गिरी अर्जुन के प्रति
यह पक्षपातिता मेरी ही[1]

× ×

बोले सहदेव तनिक रुक कर
हे आर्य अचल अब गात हुआ
मैं गिरा, द्रौपदी बिना हुये
मानो यह वज्राघात हुआ।

कारण युधिष्ठिर ने उनसे
[illegible] था यही कहा-
तुम नहीं, गिरा तुममें मेरा
ज्ञानाभिमान जो उठा रहा।
कुछ आगे कहा नकुल ने यों
गिरता हूँ अब मैं अवश निर

1- जयभारत पृ0 441 मैथिलीशरण गुप्त

सुन रहा युधिष्ठिर ने तुम से
    मेरे कुल का गर्व गिरा ।
आगे था गिरे धनंजय भी
    अब और नहीं उठता पद हो ।

तुम नहीं गिरे, वह गिरा यहाँ
    तुम में मेरा मानो मद हो ।'
बोले गिर भीम अन्त में यों-
    हे आर्य यहाँ मैं भी छूटा ।
तुम बैठे नहीं तुम्हारे मिस
    मेरा औद्धत्य यहाँ छूटा ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने आत्मोन्नति या मोक्ष साधन हेतु त्याग, तपस्या निष्काम कर्म ज्ञान एवं भक्ति आदि पर विवेचन क[िया] है । भक्ति का महत्व तो कवि ने कृष्ण के मुख से सर्वोपरि हो सिद्ध [कि]या है-

भक्ति का अद्भुत रूपमी कण
अर्पण करता हूँ मैं तत्क्षण
छोड़कर तू सब धर्म विवेक
शरण में आजा मेरे एक
स्वस्थ हो मैं तेरे हुआ
मुक्ति सब पापों से हुआ ।

---

1. जयभारत पृ0 421-22 मैथिलीशरण गुप्त

ऋतंबरा

ऋतंबरा के कवि श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात भी अन्य महाकाव्य कारों की स्थिति भौतिकता को आत्मोन्नति और ज्ञान प्राप्ति के मार्ग के मुख्य बाधा मानते हैं-

इसके बाद अध्याय यही जीवन का
मानव जिसका दिग्विजयी अभिनेता है
पशुता के हिंसक चरणों में सिर अपना
वह बार बार बन क्लीव टेक देता है ।[1]

कवि ने स्पष्ट किया है कि इस स्थिति के कारण मानव पागलों की भांति भटक रहा है वह भौतिक विभूतियों में फंसा हुआ है किन्तु ज्ञान नहीं प्राप्त कर पा रहा-

जीता उसने जल थल-नभ दिशाओं को
पर पशुता से प्रत्येक बार वह हारा
भौतिक विभूतियों का ले भार वह उतना
वह भटक रहा है पागल सा बेचारा ।।[2]

कवि ने मानव की स्थिति के बाद यह भी बताया है कि भटकाव के बाद मानव को ज्ञान की ज्योति भी मिलती है । ज्ञान ज्योति प्राप्त हो जाने के बाद मानव सत्य से साक्षात्कार करता है-

---

1- ऋतंबरा- पृ0 120 केदारनाथ मिश्र प्रभात

2- वही.

ऐसी ही पंखुड़ियों में प्रकाश की वीणा

बज उठती है मानव के अन्तर्मन में

सम्पूर्ण तेज से सत्य छाया ही जाता

आकर गरिमा के रथ पर जीवन मग में ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने सत्य या मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान के प्रकाश के महत्व को निरूपित किया है। कवि ने बताया है कि अज्ञान से मुक्ति का एक मात्र साधन ज्ञान या प्रकाश की प्राप्ति ही है।

दीपायतन-

दीपायतन का कवि अन्तश्चेतनावादी है अतएव उसने अन्तश्चेतना के जागरण के लिए जिन साधनों की अपेक्षा बताई है वस्तुतः कवि की दृष्टि में वे ही मोक्ष साधन का हेतु हैं। कवि ने इस संसार में आगमन के प्रयोग की चर्चा करते हुए कहा है कि हमारा उद्देश्य यश, मान धन, स्त्री और पुत्र के फेर में पड़ा रहना नहीं है। हमारा आगमन मन में प्रभु की नव छवि भरने के लिए है। इसके लिए कवि संदेश देता है कि ईर्ष्या घृणा और स्पर्धा का त्याग करके समस्त संस्कृतियों और धर्मों में समन्वय का प्रयास करो -

जागो हे जागो धरा देवि जागी,

युग युग की ईर्ष्या, घृणा, स्पर्धा जागी ।

अब दिशा काल सह कर आ रहे निरन्तर

यह देश जाति में बंटने का क्या अवसर ?

1- ऋतंवरा- पृ0 120 केदारनाथ मिश्र प्रभात

आते निकट बहु भू भागों के जनगण
नव धर्मों संस्कृतियों का ही सम्मिश्रण ।
भू निखरे राष्ट्रों की सीमा अतिक्रम कर
मानवता भीगी धरा सर्व जीवन भर ।[1]

कवि का स्पष्ट विचार है कि जब तक यह संसार विभक्त रहेगा । ममत्व और परत्व की भावना रहेगी तब तक चैतन्य धरोहर अर्थात चिति शक्ति से इसका साक्षात्कार नहीं हो सकेगा-

बहुत दिवार खड़ी भू गोत्रों में बंटकर
भू बनी न स्वर्ग, रही बहु खण्डित होकर
भूमी को निर्मित सीमाओं के भीतर
बंट सकी न भू संपद, चैतन्य धरोहर ।[2]

अतः क्षेत्र में प्रकाश की किरणों के विकीर्णन के लिए कवि ने अ
और श्रम का भी विशेष महत्व पूर्ण स्थान माना है । कवि नर और नारी को ही स्वर्गिक धन मानता है तथा यह स्वीकार करता है उनका अन्तरचेतना निरन्तर उन्नयन शील है जिसके कारण वे ही जनगण मंगल मय हैं-

उन्नय शील नित जिनका अन्तरचेतना
जनगण मंगल हित मनमुक्त कर अर्पण ।
मनुष्य में प्राण प्रतिष्ठा करनी नूतन ।।[3]

1- लोकायतन- पृ0 220 सुमित्रानन्दनपंत
2- वही ,पृ0 221
3- वही पृ0225

कवि यह मानता है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि श्रम रत होगी तब यहाँ स्वर्गिक सुख की प्रत्येक व्यक्ति अनुभूति करेगा और तभी वास्तविक मुक्ति प्राप्ति हो सकेगी-

> था रिक्त-मुक्ति-आदर्श मृत्यु था अनचित
> पर लोक सुखी जीवन-निर्मित किया पोषित
> वास्तविक मुक्ति वह, जब जन भू का प्रांगण
> हो स्वर्ग शांति सुख सर्वां सृजन श्रम रत मन ।[1]

दीप में कवि ने अन्तश्चेतना के विकास तथा मानवता के सुव्यवस्थापन को ही मोक्ष का प्रमुख साधन माना है। कवि का विचार है कि कर्तव्य निष्ठा और अपनी आत्मा की उन्नति के द्वारा ही समत्व का प्रसार हो सकता है और व्यक्ति अन्तः करण के ऊर्ध्व शृंगों का आरोहण कर सकता है। इस विकास के द्वारा ही अज्ञान की समाप्ति तथा पूर्ण सत्य का धरा पर अवतरण होता है-

> और यहाँ है कर व्यक्ति ऊर्ध्व आरोहण
> उस परम सत्य के पथ पर करते विचरण
> जो बहिरंतर हो युग जीवन संयोजन
> बन सके धरा उस पूर्ण सत्य का प्रांगण ।।[2]

जानकी जीवन-

जानकी जीवन महाकाव्य में मोक्ष के साधन के रूप में कवि श्री राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा ने धैर्य, इन्द्रिय विजय एवं सच्ची

1- लोकायतन- पृ022। सुमित्रानन्दन पंत

2- वही 229

महत्ता जन्म से ज्ञान कर्म की है
यही सोपान साधन श्रेष्ठता का ।
गुणों की गुरुता गरिमामयी हो,
स्वभावों में समुज्ज्वल वृत्तियाँ हों ।[1]

× ×

यहाँ उत्कर्ष व अपकर्ष दोनों
तपस्या साधनावश हो रहे हैं ।
हमारे धर्म में समुदारता है
सुने वाल्मीकि नारद को निहोरे ।।[2]

कवि ने संसार में आत्मोन्नति तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म पर भी विशेष बल दिया है । इस संदर्भ में भी राष्ट्रीय आत्मा ने स्वार्थ वश पूजा पाठ करने वालों को कड़ी फटकार भी बताई है तथा कहा है कि ऐसी पूजा व्यर्थ है तथा उससे कभी भी ज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है-

स्वार्थ साधक सिद्ध-पूजा में लगा,
स्वाद युक्त प्रसाद वो पाता रहे ।
जानता वह कब स्वीयोपास्य को,
पेट पूजक है, पुजारी है कहाँ ।।

× × ×

1- जानकी जीवन पृ0 302 राजाराम शुक्ल राष्ट्रीय आत्मा
2- वही 305

हाय जिन प्रवृत्तियों से जिस की
सोच दुष्परिणाम मिथ्याचार का ।
प्राणि-पोषक को पुकारो जो जिया
वो हुआ परितोष पीड़ा मस्त को ।।[1]

इस प्रकार से मोक्ष साधन के रूप में मुख्यतः व्यक्ति के सदाचार-विचार और निष्काम कर्म पर विशेष बल दिया है । कवि यह मानता है कि समुज्ज्वल वृत्तियों द्वारा ही मानव का उत्कर्ष संभव है ।

कृष्णायन-

यह महाकाव्य कृष्ण के जीवन पर आधारित है । कृष्ण कर्मयोगी के रूप में प्रसिद्ध हैं । प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने भी कृष्ण के इस रूप को स्पष्ट करते हुए निष्काम साधन और निष्काम कर्म पर विशेष बल दिया है ।

अर्जुन को ज्ञान प्रदान करते हुए कृष्ण के मुख से कवि ने कहलाया सुख दुख लाभ हानि व जय तथा पराजय में समान भाव रखना चाहिए। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हेतु अन्य दार्शनिक ग्रन्थों में भी इस समत्व भाव पर विशेष प्रकाश डाला गया है । कवि के शब्दों में देखिए

सुख दुख , लाभ-अलाभहु जीत
का अरु अपमानि सम जीत ।।
करहु समर, निज तजहु अराती
सुनहिं न अघ पद भोगी ।।

1-पार्वती वीकर- पृ0 1969 । राष्ट्रीय आत्मा.

सांख्य ज्ञान यहि भांति कहि बरनहुँ योग विधान ।
कटहिं जैहि बंधन कर्म के, पाय पार्थ यो ज्ञान ॥[1]

कवि का विचार है कि कर्म के प्रति निष्कामता का भाव आने पर व्यक्ति स्थित प्रज्ञ हो जाता है । स्थिति प्रज्ञ होना वस्तुतः सांसारिकता से मोक्ष प्राप्त करना ही माना गया है । कवि ने स्पष्ट किया है कि इस स्थिति को प्राप्त कर लेने के उपरान्त व्यक्ति की उद्विग्नता समाप्त हो जाती है । सुखों में कोई लालसा नहीं रहती । राग क्रोध भय आदि से वह मुक्त हो जाता है । शुभ और अशुभ की सीमाओं में वह नहीं बंधता । वह इन्द्रियों और विषय वासना से इस तरह अपने को अलग कर लेता है जैसे कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है-

जो दुःखन नाहि दुखी जाही ।
सुख महँ जाहि लालसा नाहीं ॥
राग,क्रोध भय जेहि न सतावा ।
सोई मुनि थिति प्रज्ञ कहावा ॥
सब विषयन महँ जो निःसंगा
पाय जो नित शुभ अशुभ प्रसंगा ॥
करत न द्वेष नाहि अभिनन्दन
थिर प्रज्ञ सोइ कुन्ती नन्दन ।
कछुआ ज्यूँ निज अंग सकुचायो
लेत सबै दिशा ते सिमिटायो ।
तिमि विषयन ते इन्द्रिय जोई ।
लेत खींचि थिर प्रज्ञ सोई ॥[2]

1- कृष्णायन, पृ0 205 द्वारिका प्रसाद मिश्र,
2- वही पृ0 207

कवि ने कृष्ण के ज्ञानोपदेश के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया है कि ज्ञान सब होने पर भी बिना भक्ति के स्थिति प्रज्ञा का कोई महत्व नहीं है। वह असार है। भक्ति की उमंग प्राप्त हो जाने के उपरान्त साधक को पुनः साधनाच्युत होने का भय नहीं रहता अतएव भक्ति का साधक की उन्नति में विशेष महत्व है

वैतनहु ज्ञानी करहि प्रमादु ।
होन न उपज कमन प्रम्यादु ।।
इन्द्रिय वेग पाई अति भीरा ।
कबहुँक फिरत बहत केहि ओरा ।।
जब लौं इन्द्रिय संयम संगा ।
साधक मन मन भक्ति उमंगा ।।
होहिं तबहि इन्द्रिय वश नाहीं ।
तब फिर मद, भय पुनि नाहीं ।।[1]

इस प्रकार ज्ञान की स्थिति प्राप्त करने तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने में महाकवि द्वारिका प्रसाद जी ने धर्म तथा ईश्वर की एक महत्वपूर्ण साधन माना है।

विवेक

अन्य कवियों की भांति चौधरी रामावतार अरुण ने भी आ
उत्थान या मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्म, धर्म व ज्ञान आदि की विशेष
महत्ता स्वीकार की है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि जिसके जीवन में क

1- कृष्णायन- 390307, द्वारिका प्रसाद मिश्र

नहीं है वह कदापि सच्चा ज्ञानी नहीं हो सकता । कर्तव्य की ज्योति से ही ज्ञान का आभास प्राप्त होता है । कवि ने इस संदर्भ में प्रेम के महत्त्व को भी काफी कुछ स्वीकार किया है-

ज्ञान आत्म संधान मनुज का
बुद्धि तर्क की ज्वाला ।
प्रेम हृदय की शीतलता है
सत्य स्वयं उजियाला ।

कर्म मनुज का प्रमुख धर्म
संघर्ष यही जीवन का
यही श्रेष्ठ साधना सुनिश्चित
धरती के आँगन का ।

कर्म नहीं जिसके जीवन में
वह न सत्य का ज्ञानी ।
बुद्धिमान वह मनुज, कर्म का
जो त्यागी अभिमानी ।।[1]

कवि ने इस संदर्भ में तृष्णा पर विजय प्राप्त करने पर भी ध्यान दिया है । कवि का विचार है कि योग केवल साधना व संयम का आत्मिक अन्वेषण मात्र नहीं है । जब तक योगी तृष्णा के शव का दाह नहीं कर लेता है तब तक वह सही अर्थों में योगी होकर सांसारिकता से

1- सिद्धि पृ0 284-85 पोद्दार रामावतार अरुण

दीपक से होता। दूर नहीं है अंधकार
तम का विनाश होता है दीप जलाने से
इसलिए मनुज के दीप अदूर
मानवता है उसका प्रकाश ।।[1]

इस प्रकार कवि ने मोक्ष का साधन के लिए आध्यात्मिक आवश्यक ज्ञान के प्रकाश को बताया है क्योंकि उसके द्वारा ही अज्ञान जन्य संसा[र] का विनाश संभव है ।

रामराज्य-

राम के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य में भी मोक्ष साधन के रूप में ज्ञान, भक्ति और कर्म पर विशेष बल दिया गया है । पं0 ब[...] मिश्र ने अपने इस काव्य के ग्यारहवें सर्ग में स्पष्ट किया है कि सत्कर्म ही [...] का हेतु होते हैं । वही मनुष्य सांसारिक बंधनों में बंधता है जिसके कर्म [...] अशुभ होते हैं जो व्यक्ति विश्व कल्याण की भावना रखकर कर्म करता [...] उसके कर्म मोक्षकारी होते हैं । कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि [...] करणीय और क्या अकरणीय है ? यह युग धर्म के अनुसार स्पष्ट होता [...] निर्णीत होता है-

जो हैं साधक सत्कर्म सब उत्तम श्रेय के
वे ही आधार हैं अनंत, साधन वे ही कहे गये ।
बन्धनकारी सदा कर्म अशुभ व्यक्तिगत स्वार्थ जो
मोक्षकारी सदा कर्म, जो कि विश्व हितार्थ [...]

1- विदेह पृ0 73 पोद्दार रामावतार अरुण

ग्राह्य या त्याज्य आचार कब किसे रहे यहां
निर्णय यह है होता, युग धर्मानुसार ही ।।[1]

कवि ने स्पष्ट किया है कि तप, दान, यज्ञ, भक्ति व अन्य सभी कर्मों में एक साम्य होना आवश्यक है । साम्य होने पर ही अविद्या का विनाश होता है तथा ब्रह्मविद्या से मोक्ष प्राप्त होती है । जीवों के सर्वांगीण विकास के लिए तथा समग्र विश्व में सामंजस्य के लिए ज्ञान कर्म और भक्ति की त्रिवेणी को एक रस होना आवश्यक है -

तप, दान यज्ञ, किन्तु साम्य सदा रहे
शास्त्रों ने व्यक्ति के हेतु आवश्यक जिन्हें कहा ।

तप आध्यात्म है कर्म, आत्म पुष्टयर्थ सुख
अधिभूत हुआ दान लोक पुष्टयर्थ संज्ञा

अधिदैव क्रिया यह देवों की तुष्टि दायिनी
जिससे मिलती तुष्टि आत्मा को लोक को तथा ।

तीनों की वृत्ति सधती है, यों सामंजस्य
जीवों का आप ही सधता सर्वांगीण वि

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने मोक्ष के साधनों के रूप में ज्ञान भक्ति एवं क्रिया के समन्वय को महत्व दिया है तथा ऐसे कर्मों पर बल है जिससे समस्त जीवों का कल्याण हो ।

1- रामराज्य पृ0 120 बलदेव प्रसाद मिश्र

अरूण रामायण

इस महाकाव्य में बिहार के प्रसिद्ध कवि श्री अरूण जी ने मोक्ष साधनों के रूप में अलग से तो वर्णन नहीं किया है किन्तु रामराज्य के वर्णन के बीच जिन मानव विशेषताओं और गुणों का उल्लेख किया है उन्हीं को मोक्ष साधन के रूप में माना जाना चाहिए । राम अवध के स्वामी हैं अर्थात उनके क्षेत्र में जीव अवध्य जीव हैं यानी कि ऐसे जीव जिनका वध नहीं किया जा सकता । ये जीव निश्चय ही मोक्ष पद का सहज उपभोग करने वाले हैं । कवि ने अयोध्यावासियों का चित्र इस प्रकार स्पष्ट की है-

'यौगिक व्यायाम हेतु पूजा नित्य घर घर में
आध्यात्मिक शिक्षा आत्मोन्नति हर अन्तर में ।

निर्भय जीवन पुरूषार्थी शौर्य से सम्पन्न सघन
गणतन्त्र सशक्त है वह चारित्र्यपूर्ण चमन

सामर्थ्य साधना का सामूहिक सत्प्रयास
आध्यात्मिक गति से आलोकित भौतिक प्रकाश ।'[1]

कवि का संकेत यह है कि मोक्ष साधन हेतु अध्यात्म भावना की परमावश्यकता है बिना उसके साधना की पूर्णता नहीं आती है और ऐसी स्थिति में मोक्ष भी प्राप्त नहीं हो सकती है ।

मोक्ष प्राप्ति के लिए कवि ने धर्म को भी बहुत महत्वपूर्ण मा[ना] है । कवि मानता है कि मानव मात्र में धर्म की ही व्याप्ति है ।

1-अरूण रामायण पृ० 398 पोद्दार रामावतार अरूण

धर्म के बिना अनेन्द्रियों का संतुलन असंभव है । धर्म मानव मात्र ही क्या सम्पूर्ण सृष्टि में संतुलन बनाये रखने का एक मात्र साधन है-

है धार्मिक अन्तर हो अद्भुत और सृजन में
धर्म ही धर्म है व्याप्त मनुज के जीवन में ।

धर्म के बिना अनेन्द्रिय में संतुलन नहीं
धर्म के बिना तन-मन-आत्मा का मिलन नहीं ।

है धर्म और विज्ञान बनाता सम्पूर्ण सृष्टि
उदभासित करती विश्व-धर्म की धर्म दृष्टि ।।[1]

मोक्ष की प्राप्ति के लिए जितनी अधिक आवश्यक भक्ति और सा-
साधना है उतना ही अधिक आवश्यकता कर्म की है । कवि ने राम के सा-
में कर्म के प्रति निष्ठा को भी बहुत महत्व दिया है । कवि ने स्पष्ट किया है । अयोध्या में राम के न रहते हुए भी पूरी जनता पूर्णतः कर्मनि-
है । तात्पर्य यह है कि वे लोग भी राम का सान्निध्य प्राप्त करने में लगे रहते है-

गुरु माता की अति कृपा कि समर्पित कर्म
समता सभी जनता का व्यापक मंत्र-धर्म
निष्काशित राम किन्तु निष्काशित काम नहीं
है जहां न कोई काम वहां पर राम नहीं
कर्मों के धनुषबाण से जय सन्धि सहर्ष ।।[2]

1- अरुण रामायण पृ0599 बोधसार रामावतार अरुण
2- वही 602

उल्लेखनीय है

अतिशय बल के कारण वह तन अभिमानी था।
प्रभुता को पाकर अपनी मन अज्ञानी था ।

अतिशय सुरा-सुविधा के कारण कामी शरीर
अति अहंकार से मस्त नयन में नहीं नीर ।।[1]

कवि ने इस कथन से स्पष्ट है कि अभिमान आदि विकार मोक्ष के मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करते हैं । हनुमान ने सुरा से भोग विलास आदि की निंदा कराकर भी कवि ने यह स्पष्ट किया है कि ये सभी बस मोक्ष पद प्राप्त करने के मार्ग में बहुत बड़ा व्यवधान उत्पन्न करती हैं-

नंगी अधनंगी सुरमाएँ निर्लज्ज यहाँ
नाचती यहाँ, गाती यहाँ, नाचती यहाँ ।
असुरी सभ्यता स्वयं आग से खेल रही
सुरा के घूँटों में सुरा को ही पेल रही ।
आँखें बाहर की बाहर देख रही केवल
पलकों के भीतर नहीं हृदय का करुणा जल ।
कृत्रिम मुस्कानें कृत्रिम ही अट्टहास
उभरा उठती हैं बार बार वासना प्यास ।
रावण की लंका भूमि में अतिशय काम भ्रान्ति
तृष्णा तरंग पर कब तक यह आसुरी शान्ति ?

1- अरुण रामायण पृ0 413 डॉ0 रामावतार अरुण

तेरे रावण की कनक तपस्या निष्फल है ।
उसके भीतर में कंचन का मोहक भ्रम है ।
अति स्वर्ण लिप्सा के कारण उसमें अंधकार
खुल पाता रावण नहीं कभी आत्मा-द्वार ।।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री अरुण मोक्ष साधन एवं ज्ञान प्राप्ति हेतु अनासक्ति एवं धर्म पर विशेष बल दिया है ।

भगवान राम

श्री मनबोधन लाल कृत इस महाकाव्य में भी अन्य महा[काव्यों] की भांति कर्तव्य निष्ठा पर विशेष बल है । लक्ष्मण आदि के चरित्र के माध्यम से कवि ने आत्मोन्नति के हेतुओं को जहां स्पष्ट किया है वहां लक्ष्मण के गुणों या कार्य शैली की अभिव्यक्ति की है । वहां कवि ने कीर्ति धनोपभोग की लिप्सा आदि की भर्त्सना की है तथा कर्तव्य निष्ठा को ज्ञान प्राप्ति एवं विकास का मुख्य साधन माना है-

कर्तव्य मुख्य मम है भवदीय सेवा
पादारविन्द रति जीवन साधना है ।
ऐश्वर्य कीर्ति धन की उपभोग लिप्सा
उद्भूत नाथ नाथ मन में न कभी हुयी है ।

आओ अतः त्वरित ही धनुबाण ले मैं
आगे चलूँ विपिन में कर मार्ग दर्शी ।

1- अरुण रामायण - पृ0 458 पोद्दार रामावतार अरुण

देगा जब सुलाना प्रभु सुमित्रा को
होगा अजापद क्या हो मय या मयाठौं ।

कर्तव्य धर्मरत जीवन की तपस्या ।
सम्पूर्ण सिद्धि उसकी इस भाँति होगी
स्वामी कृपा उचित वेदिका में हुआ तो
निर्माल्य पुष्प सम मूर्धित प्राप्त होगा ।।[1]

कवि ने स्थान स्थान पर दुष्कृतियों के फल की भी चर्चा की है तथा बताया है कि अच्छे कर्म न करने वाला व्यक्ति अपने कार्यों का फल भोगता है तथा न संसार में ही उन्नति कर पाता है और न ही उसका परमार्थ ही सिद्ध होता है-

जनक-मित्र निर्मम पातकी
जन प्रपीड़क क्रूर उपद्रवी-
विभव पाकर भी इस अन्ततः
कुकृति का अपनी फल भोगते ।[2]

अतएव अन्य कवियों की भाँति मन मोहन लाल जी भी ज्ञान प्राप्ति के साधनों में कर्तव्य के प्रति निष्ठा और निष्काम कर्म को कां
महत्व देते प्रतीत होते हैं ।

1- भगवान राम पृ0 107 श्री मन मोहन लाल

2- भगवान राम पृ0 322 वही

उक्त महाकाव्यों में से सभी के रचनाकारों का मोक्ष साधन के माध्यम से यह प्रमुख उद्देश्य रहा है कि साधक संसार के कल्याण के लिए किये जाने वाले कार्यों को प्राथमिकता दे । उक्त प्रायः इन सभी कवियों की दृष्टि में संसार में सुख शान्ति का विस्तार ही मानवता के लिए सच्ची मोक्ष साधना है । उक्त महाकाव्यों में से कहीं कुछ में मोक्ष को अंतिम पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है वहीं कुछ में अज्ञान के विनाश को मोक्ष माना गया है । किन्तु सभी कवि प्रचलित ज्ञान एवं कर्म के समन्वय के प्रश्न पर प्रायः एकमत प्रतीत होते हैं ।

किया है इस अधिकार के प्रयोग में पूर्ण स्वातंत्र्य दिखाई देते हैं। पहले के सभी महाकाव्य कथानक की दृष्टि से दो प्रकार के हैं - पहले जिनमें कथा का विविधता समावेश है जैसे प्रिय प्रवास, साकेत, श्री रामचन्द्रोदय, सिद्धार्थ, कामायनी, पार्वती, जयभारत, जानकी जीवन, कृष्णायन व उत्तर रामायण आदि दूसरे वे जिनमें कथासूत्र में सूक्ष्म है जैसे विरहिणी व लोकायतन आदि।

भारतीय दर्शन के मुख्य विचार बिन्दु हैं - जीव, ईश्वर, जगत, माया, मोक्ष तथा मोक्ष साधन। उपर्युक्त सभी महाकाव्यों में इन सभी का व्यापक रूप से समावेश है। जीव को प्रायः सभी आस्तिक दर्शनों में परब्रह्म परमात्मा का अंश माना गया है। प्रायः उक्त सभी महाकाव्यों में किसी न किसी रूप में यह लक्षित होता है कि जीवात्मा अव्यय है। यह प्राणियों में अधिष्ठित होता हुआ उसे देखने सुनने तथा भोगने में सहायक है। इन जीवात्माओं में से जो समस्त दूसरे प्राणियों तथा विद्या, अविद्या आदि को ब्रह्म मान कर प्रयत्न उत्पन्न हुई भेदबुद्धि का छेदन करता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है-

> परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
> उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश॥[1]

सिद्धार्थ महाकाव्य यद्यपि भगवान बुद्ध के जीवन पर आधारित है किन्तु उसमें भी वैदिक दर्शन और विशेष कर अद्वैतवाद की पर्याप्त झलक दृष्टिगत होती है। प्रायः सभी महाकाव्यकारों ने जीव को कर्म कर्ता और कर्मों के भोग के रूप चित्रित किया है। इस दृष्टि से उक्त सभी महाकाव्यकारों के विचार यजुर्वेद के इस मंत्र से प्रभावित ज्ञात होते हैं-

---

1- यजु0 32/11

मान्य नहीं हुआ है और मोक्ष को उसी संदर्भ में देखा गया है, जिसे भारतीय दर्शनों ने निरखा परखा है ।

इन महाकाव्यों में से अधिकांश में मोक्ष का निर्वाण नाम दिया गया है । पार्वती सिद्धार्थ में यही पाशमुक्त स्थिति है । कामायनी में यह स्थिति समरसता में निहित प्रतीत होती है जहाँ अखण्ड आनन्द पर बल दिया गया है । लोकायतन आदि महाकाव्यों में जन जन की शोषण और अज्ञान से मुक्ति के बाद उनके अन्तर्मन में प्रकाश के विस्तार को मोक्ष स्थिति माना गया है । इस प्रकार सामान्यतः लोक में व्याप्त ममत्व और परत्व, दुःख सुख, हानि लाभ आदि स्थितियों से मुक्त होने के ही मोक्ष की संज्ञा दी जाती है और उक्त सभी महाकाव्यों में भी इस स्थिति का प्रायः बहुत ही विस्तार से वर्णन है ।

जीवन्मुक्ति क्रम कर मुक्ति में ज्ञान के महत्व को विशेष रूप से स्वीकारा गया है । वैसे सामान्यतः ज्ञान भक्ति और कर्म, मोक्ष के तीन प्रमुख साधन हैं । आधुनिक युग के प्रायः सभी महाकाव्यों में इन तीनों ही साधनों पर बल है किन्तु सर्वाधिक महत्व कर्म पर दिया गया है । सभी कवियों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि कर्म द्वारा आत्मोन्नति तो संभव है ही लोक के पापों का विनाश भी सम्भवतः उसी द्वारा ही संभव है । शोषित पीड़ित और दलित मानवता की मुक्ति के लिए कर्म ही एक मात्र साधना है । इन कवियों का विचार है कि कर्म में ही आनन्द है । इस दृष्टि से सभी कवि गांधी दर्शन से प्रभावित प्रतीत होते हैं और गांधी दर्शन गीता के कर्मयोग से प्रभावित है । अतएव आधुनिक युग के अधिकांश महाकाव्यों का मूल स्वर कर्म परक है उनका दर्शन और दार्शनिक चिंतन कर्म को ही मूल केन्द्र मानकर मुखरित हुआ है ।

पुस्तक सूची

1- काव्यशास्त्र — डा0 भगीरथ मिश्र, तृतीय संस्करण 1977 वि0 प्रकाशन वाराणसी ।

2- काव्य प्रकाश

3- रस गंगाधर (काव्यमाला)

4- रस रंजन — महावीर प्रसाद द्विवेदी

5- चिन्तामणि, भाग 1 — आ0 रामचन्द्र शुक्ल

6- काव्य और कला तथा अन्य निबंध — जय शंकर प्रसाद

7- काव्यशास्त्र — डा0 भगीरथ मिश्र

8- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधान — डा0 निर्मला जैन

9- साहित्यालोचन — बाबू श्यामसुन्दर दास

10- गोस्वामी तुलसीदास — पं0 रामचन्द्र शुक्ल

11- हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ0 रामचन्द्र शुक्ल

12- वाङमयविमर्श — पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

13- काव्य दर्पण — पं0 रामदहिन मिश्र

14- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास — डा0 श्रीकृष्णलाल

15- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं — डा0 निर्मला जैन

16- अग्निपुराण अनुवादक रामलाल शास्त्री

17- काव्यानुशासन — हेमचन्द्र

18- साहित्य दर्पण — विश्वनाथ

19. ध्वन्यालोक — व्या० डा० नगेन्द्र
20. काव्य के रूप — बाबू गुलाबराय
21. आधुनिक कवि — सुमित्रानन्दन पंत
22. कविता कलाप — स०आ०महावीर प्रसाद द्विवेदी
23. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास — डा० शम्भूनाथ सिंह
24. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं — डा० निर्मला जैन
25. भारतीय दर्शन — श्री पारसनाथ द्विवेदी
26. प्रसाद साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि — श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
27. भारतीय दर्शन — डा० उमेश मिश्र
28. भारतीय दर्शन भाग 2 — डा० राधाकृष्णन
29. श्री मद्भगवद्गीता
30. ब्रह्मभाष्य
31. मुण्डकोपनिषद
32. तैत्तिरीयोपनिषद
33. बार्हस्पत्य सूत्र
34. सर्वदर्शन संग्रह
35. शारदातिलक
36. ऋग्वेद
37. तत्वार्थ सूत्र 1/4
38. तत्व सार
39. प्रकरण पंचिका
40. रामराज्य भूमिका — डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

41- प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन — डा0द्वारिका प्रसाद सक्सेना

42- प्रिय प्रवास

43- गुप्त और साकेत — प्रो0 राजकुमार

44- विरहिणी — आ0मुंशीराम शर्मा 'सोम'

45- श्री रामचन्द्रोदय काव्य — श्रीराम काव्य ज्योतिषी

46- सिद्धार्थ — अनूप शर्मा

47- कामायनी — प्रसाद

48- कामायनी की काव्य प्रवृत्ति — डा0 रामेश्वर प्रसाद

49- पार्वती — भारती नन्दन

50- जयभारत — मैथिली शरण गुप्त

51- साकेत में भक्ति और दर्शन — डा0द्वारिका प्रसाद सक्सेना

52- साकेत — मैथिलीशरण गुप्त

53- सांवरा — केदारनाथ पाण्डेय

54- जयभारत — मैथिलीशरण गुप्त

55- लोकायतन — सुमित्रानन्दन पंत

56- प्रसाद का शिल्प की दार्शनिक पृष्ठभूमि — डा0जगदीश प्रसाद

57- कामायनी के अध्ययन की समस्याएं — डा0 नगेन्द्र

58- हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन — देवीप्रसाद गुप्त

59- भारतीय दर्शन — डा0पारसनाथ

60- जानकी जीवन — राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा'

61. कृष्णायन — द्वारिका प्रसाद मिश्र
62. विदेह — पोद्दार रामावतार अरुण
63. रामराज्य — बलदेव प्रसाद मिश्र
64. भगवान राम — श्री मनमोहन लाल
65. प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा — डा0जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
66. ईशावास्य उपनिषद
67. केन उपनिषद
68. शिव महिम्न स्तोत्र
69. सामवेद
70. ऋग्वेद
71. धर्म और दर्शन — पं0 बलदेव उपाध्याय
72. छायावाद और वैदिक दर्शन — डा0 प्रेम प्रकाश रस्तोगी
73. भक्ति का विकास — डा0मुंशीराम शर्मा 'सोम'
74. कामायनी चिन्तन — डा0 विमल कुमार जैन
75. प्रसाद दर्शन — डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना
76. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास — डा0 शकुन्तला दुबे
77. जैन दर्शन — डा0मोहनलाल मेहता
78. बौद्ध दर्शन मीमांसा — पं0 बलदेव उपाध्याय
79. महाकवि 'हरिऔध' — गिरिजादत्त शुक्ल
80. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य — डा0 गोविन्द राम शर्मा
81. महाकाव्य का स्वरूप विकास — डा0 शम्भूनाथ सिंह